दिनकर के काव्य मे क्रान्तिमन्त चेतना

विशेष के काव्यों • कालिदास कला

निधि भार्गव

श्रद्धेय गुरुवर
डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
को
सश्रद्ध समर्पित

प्राक्कथन

श्री रामधारीसिंह दिनकर प्रगतिशील काव्य सरचना के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। उनकी सुदीर्घकालीन काव्य साधना में अनेक रचनात्मक मोड़ आये किन्तु वे निर्बाध गति से राष्ट्रीय चेतनापरक काव्य सर्जना करते रहे। श्री मैथिलीशरण गुप्त के पश्चात वे ही भारत के दूसरे राष्ट्रकवि घोषित किये गये। दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वप्रमुख स्वर रहा है। उन्होंने प्रेम, सौन्दर्य, शृंगार, प्रगति, प्रयोग और क्रान्ति आदि सभी से समन्वित चेतना की काव्य सरचना की है। यही कारण है कि उनकी कविता का रचनात्मक अत्यन्त व्यापक है। उनकी रचना, रचनाधर्मिता निरन्तर विकासोन्मुखी रही है। दिनकरजी की काव्य यात्रा के अनेक पड़ावों में सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय चेतना से समन्वित रहा है। अंग्रेजी शासनकाल में उन्होंने भारत की मुक्ति के लिए यदि स्वदेश प्रेम की रचनाएं प्रस्तुत कीं, तो चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी लम्बी उद्बोधनात्मक एवं सम्प्रेरक कविता भी लिखी। रेणुका, हुंकार, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा नामक काव्यकृतियां उनकी क्रान्तिमूलक चेतना के जीवन्त प्रतिमान हैं। शृंगार और सौन्दर्यबोध की चरम परिणति 'उर्वशी' प्रबन्ध काव्य में दृष्टिगत होती है। डा० सावित्री सिन्हा ने दिनकरजी को उचित ही 'युगचारण' कहा है। उन्हें जनकवि, राष्ट्रकवि जैसे सम्बोधनों से भी सम्मानित किया गया है। दिनकरजी के काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं का उद्घोष मुझे सदैव से ही आकर्षित करता रहा है। प्राथमिक कक्षाओं में ही हिमालय पर लिखी गई उनकी कविता की—'मेरे नगपति मेरे विशाल, साकार दिव्य गौरव विराट मेरी जननी के हिमकिरीट मेरे भारत के दिव्य भाल।' जैसी पंक्तियां मानस पर अमिट छाप छोड़ गई। जैसे जैसे उनके काव्यों को पढ़ने का अवसर मिला, वैसे-वैसे उनके प्रति मेरा काव्यानुराग दृढ़ से दृढ़तर होता गया। प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध मेरी उसी चिरसंचित आकांक्षा की चरम परिणति है।

दिनकरजी के काव्य के अनेक आयाम और परिप्रेक्ष्य हैं। प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध के विषय का चयन कराने में आदरणीय निर्देशक महोदय डा० देवीप्रसाद गुप्त ने सहायता की और इच्छित विषय चुन लेने पर मैंने पूरे मनोयोग से वर्ष भर कार्य किया। यथार्थ में देखा जाय तो दिनकर की क्रान्तिमूलक चेतना ही उनके काव्य की मूलभूत

सजनात्मक चेतना है। इसी चेतना का विविध का य सन्दर्भों म खोजने का विनम्र प्रयास मैंने प्रस्तुत लघु शोध प्रब ध क माध्यम स किया है। अपन प्रयास म मैं कहा तक सफल हुई हू इसका मूल्याकन तो विद्वान् ही कर सकते हैं। मुझे तो यही सन्ताप है कि दिनकरजी के का य को मनोयोगपूर्वक पढन और गहराई म समझने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रब ध म प्राक्कथन और उपसहार के अतिरिक्त सात अध्याय है।

'महाकवि दिनकर यक्तित्व और कृतित्व शीर्षक प्रथम अध्याय म कवि का सक्षिप्त जीवन परिचय एव कृतित्व का प्रवृत्तिमूलक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जीवन परिचय म जन्म शिक्षा दीक्षा विद्यार्थी जीवन क सस्कारो व्यवसाय कार्यक्षेत्र पुरस्कार सम्मान, पत्नियाँ और सृजनात्मक यक्तित्व क प्रेरणा स्रोतो का विवेचन किया गया है। कृतित्व परिचय क अ तगत कवि द्वारा रचित काव्य कृतियो (रेणुका, हुकार रसवन्ती द्वन्द्वगीत सामधेनी कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी नीलकुसुम धूप और धुआ, बापू कोयला और कवित्त परशुराम की प्रतीक्षा उर्वशी आदि) तथा गद्य रचनाओ (सस्कृति के चार अध्याय मिट्टी की ओर अर्धनारीश्वर आदि) का प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय क समापन भाग म दिनकरजी क रचनाधर्मी व्यक्तित्व की ओजस्विता उग्रता, युगधर्मिता कल्पनाशीलता राष्ट्रीयता, क्रान्तिमत्तता आदि विशेषताओ का निरूपण किया गया है।

दिनकर की काव्य चेतना का विकास शीर्षक द्वितीय अध्याय म कवि की का य चेतना क विकास क चार चरणो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। य चरण हैं—रोमांटिक भावबोध की कविताए राष्ट्रीय भावना एव प्रगतिशील चेतना की कविताए आध्यात्मिक भावबोध की कविताए और नयी कविता। दिनकर के का यो की प्रवृत्तिमूलक सचेतना के अध्ययन स य तथ्य निरूपित हुआ है कि उन्होंने राग चेतना राष्ट्रीय चेतना प्रगतिशील चेतना मनोवैज्ञानिक चेतना आध्यात्मिक चेतना कामभावना क्रान्तिमत चेतना आदि विविध प्रवृत्तियो को आत्मसात् करके युग-सापेक्ष का य सरचना की है।

क्रान्तिमत्त चेतना सद्धान्तिक स्वरूप विवेचन शीर्षक तृतीय अध्याय म सर्वप्रथम 'क्रान्ति' और 'चेतना' श दो की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या करत हुए क्रान्ति की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। इसी अनुक्रम म क्रान्ति का समानार्थी श द जसे—विध्वस विप्लव आन्दोलन सघर्ष आदि स पार्थक्य दर्शाया गया है। क्रान्ति के भेद प्रभेदो क अन्तर्गत—राजनीतिक सामाजिक धार्मिक आर्थिक सास्कृतिक और साहि यिक क्रान्तियो का विवेचन करन के साथ-साथ विश्व की उन महान् क्रान्तियो (औद्योगिक क्रान्ति फ्रांसीसी क्रान्ति रूसी क्रान्ति अमरीकी क्रान्ति आदि) का भी निरूपण किया गया है जिन्होंने दिनकर का क्रान्तिमत्त चेतना के निर्माण म योगदान दिया है।

सामाजिक क्रान्ति शीर्षक चतुर्थ अध्याय म दिनकर के विभिन्न का यों म

सामाजिक क्रान्ति के विविध आयामों को दर्शाया गया है। ये आयाम हैं—नवीन सामाजिक संरचना का स्वरूप वर्ण व्यवस्था, जातिवाद का खण्डन अंधविश्वासों की अवमानना, शोषण के प्रति आक्रोश, अस्पृश्यता उन्मूलन एवं नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना का आग्रह आदि।

'राजनीतिक क्रान्ति' शीर्षक पंचम अध्याय में सर्वप्रथम राजनीतिक क्रान्ति का स्वरूप विश्लेषण करते हुए देश में राष्ट्रीय जागरण की उस पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है, जिसने दिनकर के राजनीतिक चिन्तन को पुष्ट किया तथा राजनीतिक क्रान्ति को दृष्टि दी। दिनकर के काव्यों में जहाँ उग्र राष्ट्रवाद और साम्यवादी चिंतन का समर्थन है वहीं साम्राज्यवाद तथा गांधीजी के अहिंसावाद का खण्डन भी है। कवि ने युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए युगसापेक्ष मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह भी प्रकट किया है।

'धार्मिक क्रान्ति' शीर्षक षष्ठ अध्याय में उन कृतियों का विवेचन किया गया है जो दिनकर के काव्यों में आध्यात्मिक क्रान्ति की परिचायक हैं। जैसे—भाग्यवाद का खण्डन तथा कर्मवाद की प्रतिष्ठा, धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन तथा मानवतावादी धर्म की प्रस्थापना, निवृत्ति पर प्रवृत्ति की विजय का चित्रण, मृत्यु पर जीवन विजय का संदेश, भोगवाद पर समष्टि हित की विजय, अध्यात्म दर्शन की नवीन संकल्पना, धार्मिक आन्दोलनों के प्रभाव का मूल्यांकन तथा आस्था और अनास्था के द्वन्द्व का चित्रण। निष्कर्ष के अन्तर्गत दिनकरजी के काव्य में निरूपित धार्मिक क्रान्ति के विविध पहलुओं को उजागर किया गया है।

'साहित्यिक क्रान्ति' शीर्षक सप्तम अध्याय में सर्वप्रथम दिनकरजी की साहित्यिक संरचना में विषय चयन की पृष्ठभूमि और उसमें क्रान्तिमत्तता के स्वरूप की खोज की गई है। इसी प्रकार काव्यरूपात्मक प्रयोगों की स्वतन्त्रता, भाषात्मक संरचना के स्वरूप और शिल्प विधान के अन्य तत्वों में कवि की क्रान्तिकारी दृष्टि का अनुसंधान किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों, उपलब्धियों और सम्भावनाओं का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन में मुझे जिनसे सहयोग मिला उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य मानती हूँ। सर्वप्रथम तो मैं उन समस्त लेखकों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनकी रचनाओं का उपयोग मैंने सहायक ग्रंथों के रूप में किया है। इस शोध-कार्य को आरम्भ से अंत तक लिखने में मेरी बहन श्रीमती कुसुम का जो स्नेहपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ वह सदैव ही अविस्मरणीय रहेगा। मेरे पूज्य पिता श्री अमरसिंह भार्गव, माताजी, भाई डॉ० योगेन्द्रसिंह भार्गव, बहनों, श्री कन्हैयालाल भार्गव, श्री दिनेश सक्सेना तथा प्रो० गुरदक्षानसिंह की प्रेरणा, स्नेह और सहयोग से मुझे वह शक्ति प्राप्त हुई जिससे कि यह शोध कार्य विधिवत सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मैं उन सभी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध के सुरुचिपूर्ण टंकण के लिए श्री दिलीप कुमार भी धन्यवाद के पात्र हैं।

सृजनात्मक चेतना है। इसी चेतना को विविध रूपों व सन्दर्भों में खोजने का विनम्र प्रयास मैंने प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध के माध्यम से किया है। अपने प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हुई हूँ इसका मूल्यांकन तो विद्वान ही कर सकते हैं। मुझे तो यही सन्तोष है कि दिनकरजी के काव्य को मनोयोगपूर्वक पढ़ने और गहराई से समझने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में प्राक्कथन और उपसंहार के अतिरिक्त सात अध्याय हैं।

महाकवि दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व शीर्षक प्रथम अध्याय में कवि का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं कृतित्व का प्रवृत्तिमूलक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जीवन परिचय में जन्म, शिक्षा दीक्षा, विद्यार्थी जीवन के संस्कारों, व्यवसाय, कार्य क्षेत्र, पुरस्कार, सम्मान, पदवियाँ और सृजनात्मक व्यक्तित्व के प्रेरणा स्रोतों का विवेचन किया गया है। कृतित्व परिचय के अन्तर्गत कवि द्वारा रचित काव्य कृतियों (रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, नीलकुसुम, धूप और धुआँ, बापू, कोयला और कवित्व, परशुराम की प्रतीक्षा, उर्वशी आदि) तथा गद्य रचनाओं (संस्कृति के चार अध्याय, मिट्टी की ओर, अर्धनारीश्वर आदि) का प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय के समापन भाग में दिनकरजी के रचनाधर्मी व्यक्तित्व की ओजस्विता, उदारता, युगधर्मिता, कल्पनाशीलता, राष्ट्रीयता, क्रान्तिमत्तता आदि विशेषताओं का निरूपण किया गया है।

दिनकर की काव्य चेतना का विकास शीर्षक द्वितीय अध्याय में कवि की काव्य चेतना के विकास के चार चरणों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ये चरण हैं—रोमांटिक भावबोध की कविताएँ, राष्ट्रीय भावना एवं प्रगतिशील चेतना की कविताएँ, आध्यात्मिक भावबोध की कविताएँ और नयी कविता। दिनकर के काव्यों की प्रवृत्तिमूलक सचेतना के अध्ययन से यह तथ्य निरूपित हुआ है कि उन्होंने राग चेतना, राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशील चेतना, मनोवैज्ञानिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना, कामभावना, क्रान्तिमत चेतना आदि विविध प्रवृत्तियों को आत्मसात् करके युग सापेक्ष काव्य-सरचना की है।

क्रान्तिमत चेतना : सैद्धान्तिक स्वरूप विवेचन शीर्षक तृतीय अध्याय में सर्वप्रथम 'क्रान्ति' और 'चेतना' शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या करते हुए क्रान्ति की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। इसी अनुक्रम में क्रान्ति के समानार्थी शब्दों जैसे—विध्वंस, विप्लव, आन्दोलन, संघर्ष आदि से पार्थक्य दर्शाया गया है। क्रान्ति के भेद प्रभेदों के अन्तर्गत—राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्रान्तियों का विवेचन करने के साथ साथ विश्व की उन महान् क्रान्तियों (औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांसीसी क्रान्ति, रूसी क्रान्ति, अमरीकी क्रान्ति आदि) का भी निरूपण किया गया है जिन्होंने दिनकर की क्रान्तिमत्त चेतना के निर्माण में योगदान किया है।

सामाजिक क्रान्ति शीर्षक चतुर्थ अध्याय में दिनकर के विभिन्न काव्यों में

सामाजिक क्रान्ति के विविध आयामों को दर्शाया गया है। ये आयाम हैं—नवीन सामाजिक संरचना का संकल्प, वर्ण व्यवस्था जातिवाद का खण्डन, अंधविश्वासों की अवमानना शोषण के प्रति आक्रोश, अस्पृश्यता उन्मूलन एवं नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना का आग्रह आदि।

राजनीतिक क्रान्ति' शीर्षक पंचम अध्याय में सर्वप्रथम राजनीतिक क्रांति का स्वरूप विश्लेषण करते हुए देश में राष्ट्रीय जागरण की उस पृष्ठभूमि का निरूपण किया गया है जिसने दिनकर के राजनीतिक चिन्तन को पुष्ट किया तथा राजनीतिक क्रांति को दृष्टि दी। दिनकर के काव्य में जहाँ उग्र राष्ट्रवाद और साम्यवादी चिन्तन का समर्थन है वहीं साम्राज्यवाद तथा गांधीजी के अहिंसावाद का खण्डन भी है। सविनय युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए युगानुरूप मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह भी प्रकट किया है।

धार्मिक क्रान्ति शीर्षक षष्ठ अध्याय में उन कृतियों का विवेचन किया गया है जो दिनकर के काव्य में आध्यात्मिक क्रांति की परिचायक हैं। जैसे—भाग्यवाद का खण्डन तथा कर्मवाद की प्रतिष्ठा, धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन तथा मानवतावादी धर्म की प्रस्थापना, निवृत्ति पर प्रवृत्ति की विजय का चित्रण मृत्यु पर जीवन विजय का स्वरूप, भौतिकवाद पर समष्टि हित की विजय अध्यात्म दर्शन का नवीन संकल्पना, धार्मिक आस्था एवं भावना के प्रभाव का मूल्यांकन तथा आस्था और अनास्था के द्वन्द्व का चित्रण। निष्कर्ष के अन्तर्गत दिनकर जी के काव्य में निहित धार्मिक क्रान्ति के विविध पहलुओं को उजागर किया गया है।

साहित्यिक क्रान्ति शीर्षक सप्तम अध्याय में सर्वप्रथम दिनकरजी की साहित्यिक संरचना में विषय चयन की पृष्ठभूमि और उसमें क्रान्तिमत्ता के स्वरूप की खोज की गई है। इसी प्रकार काव्यरूपात्मक प्रयोगों की स्वच्छन्दता भाषागत संरचना के स्वरूप और शिल्प विधान के अन्य तत्वों में कवि की क्रांतिकारी दृष्टि का अनुसंधान किया गया है।

उपसंहार' के अन्तर्गत प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों उपलब्धियों और सम्भावनाओं का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के लेखन में मुझे जिनसे सहयोग मिला उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य मानती हूँ। सर्वप्रथम तो मैं उन समस्त लेखकों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनकी रचनाओं का उपयोग मैंने सहायक ग्रन्थों के रूप में किया है। इस शोध-कार्य का आरम्भ से अन्त तक निर्देशन में मेरा बहन श्रीमती कुसुम का जो स्नेहपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ वह सदैव ही अविस्मरणीय रहेगा। मेरे पूज्य पिता श्री अमरसिंह भागव, माताजी, भाई डा० योगेन्द्रसिंह भागव बहनोई श्री कन्हैयालाल भागव, श्री दिनेश सक्सेना तथा प्रो० गुरदयालसिंह की प्रेरणा, स्नेह और सहयोग से मुझे वह शक्ति प्राप्त हुई जिससे कि यह शोध कार्य विधिवत सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मैं उन सभी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध के सुरुचिपूर्ण टंकण के लिए श्री दिलीप कुमार भी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत लघु शोध प्रब ध श्रद्धेय गुरुवर डा० देवीप्रसाद गुप्त, अध्यक्ष—स्नातकोत्तर हि दी विभाग राजकीय डूगर महाविद्यालय, बीकानेर के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन म लिखा गया है। परमादरणीय डा० गुप्त ने इस लघु शोध प्रब ध के लेखन के प्रत्येक चरण पर अत्य त आत्मीय भाव स मुझ मार्गदर्शन दिया है। श्रद्धेय गुरुवर डॉ० गुप्त की मैं अत्य त कृतज्ञ हू और श्रद्धावनत होकर उनके आशीर्वाद की कामना करती हू।

अ त म अपनी त्रुटियो क लिए क्षमा मागते हुए वर्ष भर की शोध साधना का यह सुमन मा भारती का समर्पित करती हू।

अमर कला निकेतन
सिविल लाइ स, बीकानेर
२७ जून १९७९

—निधि भार्गव

अनुक्रम

अध्याय १

महाकवि दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व

संक्षिप्त जीवन परिचय

दिनकरजी राष्ट्रवादी काव्य चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रगतिशील चेतना में ओत प्रोत राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचारक तथा क्रांतिमत चेतना के द्रष्टा रामधारीसिंह दिनकर का जन्म सम्वत १९६५ अर्थात ३० सितम्बर १९०८ ई० में सिमरिया घाट ग्राम जिला मुंगेर (बिहार) में एक कृषक परिवार में हुआ था। आर्थिक संकटों में जूझते हुए कृषक परिवार में उत्पन्न दिनकरजी प्रतिभा के धनी थे। विद्यार्थी के रूप में दिनकरजी को अपने गाँव से मोकाम घाट पैदल चल कर विद्योपार्जन हेतु जाना पड़ता था। उनके परिश्रमी व्यक्तित्व में थकान की शिकन तक नहीं आई। आती भी कैसे? गंगा के कछार पर स्थित ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक वैभव को धारण करने वाला सुरम्य सिमरिया गाँव अद्वितीय सुन्दरता को धारण करने वाला है। इस गाँव के पश्चिम की ओर बाया नदी आकर जब इस भूमि पर दुलार बरसा देती है। दो नदियों से परिवेष्ठित यह रमणीय गाँव विद्यापति की काकली में भी कभी कभी झूलने लगता है। इस सुरम्य स्थान की स्थायी छवि कवि के हृदय पटल पर अंकित हो गई।[1] इसकी झलक उनके काव्य में यत्र तत्र दृष्टिगत होती रहती है।

आंतरिक प्रतिभा के साथ ही साथ दिनकरजी का बाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं था। इस सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं—गोरा चिट्टा रंग लम्बाई पाँच फुट ग्यारह इंच भारी भरकम शरीर बड़ी-बड़ी आँखें जो रचना के दिनों में चिंतन विशिष्ट लगती हैं पर बात करते समय या कविता पाठ करते समय प्रदीप्त हो उठती हैं तलवार भरी बुलन्द आवाज तेज चाल और क्षिप्र बुद्धि—ये हैं वह बहिरंग विशेषताएँ जिनसे दिनकर का व्यक्तित्व बना है।[2] सच तो यह है कि—दिनकर के व्यक्तित्व में धरती पुत्र का आत्मविश्वास और दृढ़ता साहित्यकार की

१ रेणुका—मिथिला में शरत् पृ० ५७ ५८
२ मन्मथनाथ गुप्त—आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि रामधारीसिंह दिनकर पृ० ५

अनुभूति प्रवणता, दार्शनिक का चिन्तन और राजपुरुष का ओज और तेज। दूसरे शब्दों में उनके जीवन की कहानी हल, हँसिया, लेखनी और पार्लियामेण्ट की बैठकों की कहानी है। उनके बाह्य व्यक्तित्व में भी क्षत्रिय का तेज, ब्राह्मण का अहं, परशुराम की गर्जन और कालिदास की कलात्मकता है।[1]

शिक्षा-दीक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्रातः उठकर पाँच छः मील की दूरी पर स्कूल में जाना पड़ता था। उन्होंने बाढ़ की लहरों के सिर पर पैर रखकर और गर्मी में तप्त बालू में होकर भी आरम्भिक शिक्षा का क्रम चलाये रखा।[2] दिनकरजी का जीवन बड़ी ही विषम स्थितियों से गुजरा था। इसी विषमता ने उन्हें निर्भीक साहित्यकार बना दिया। प्रारम्भ काल में ही विद्यार्जन दिनकर के लिए साधना के रूप में आया। यह साधना यद्यपि परिस्थितिजन्य थी परन्तु उसने उनको एक कर्मठ जीवन-दशा प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप आज वह इतने निर्भीक साहित्यकार बन सके हैं।[3] प्रारम्भिक शिक्षा दिनकरजी ने एक राष्ट्रीय पाठशाला में अर्जित की। मधुर तथा ओजपूर्ण कंठ ध्वनि होने के कारण सार्वजनिक सभाओं में 'वन्देमातरम्' गाने जाते थे। सन् १९२२ में असहयोग आन्दोलन बन्द होने पर राष्ट्रीय पाठशाला बन्द हो गई। दिनकरजी को अब राजकीय मिडिल स्कूल में जाना पड़ा। सन् १९२८ में मोकामा घाट के एच० ई० स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। पटना से इतिहास में आनर्स लेकर बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

छात्र जीवन में दिनकरजी बड़ी सादगी से रहते थे। मोटी धोती, मोटी मारकीन का कुरता, कंधे पर चादर और कभी-कभी देहाती मोची का मामूली जूता, यही उनकी पोशाक थी।[4] दिनकरजी के बाल काफी मोटे थे जिनपर तेल के खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने विद्यार्थी जीवन में वह चमक-दमक से दूर साधारण और सीधा जीवन व्यतीत करते थे। आठवीं और नवीं कक्षा तक वे गणित में बहुत तेज थे। दूसरे विषयों में भी वे कक्षा के प्रथम छात्र थे। ग्यारहवीं कक्षा में आकर उनका ध्यान बीजगणित और रेखागणित से हट गया। अब वे स्कूली पढ़ाई की अपेक्षा कविता और साहित्य पर अधिक ध्यान देने लगे थे। पर कक्षा में कमजोर विद्यार्थी वे कभी नहीं रहे। पढ़ने के साथ-साथ वे ओजपूर्ण कार्यक्रमों में भी बड़े उत्साह से भाग लेते थे।[5]

१ डॉ० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर, पृ० २२
२ कु० पद्मावती—दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ४३
३ युगचारण दिनकर, पृ० २
४ युगचारण दिनकर, पृ० ८
५ वही, पृ० ४

विद्यार्थी जीवन के संस्कार

दिनकरजी के विद्यार्थी जीवन म ब्रिटिश साम्राज्य का स्वदेश पर बोलबाला था। दिनकरजी ने जब देश की पीड़ित एव शोषित जनता को देखा तो समाज की विषम स्थिति माना उन्ह पुकारने लगी। यही संस्कार आगे चलकर उनके काव्य 'हुंकार' म मिलता है। यथा—

> युगों से हम अनय का भार ढोते आ रहे हैं,
> न बोलो तू मगर, हम रोज मिटते जा रहे हैं,
> पिलाने को कहाँ म रक्त लायें दानवों का?
> नहीं क्या स्वत्व है प्रतिशोध का हम मानवों को।'
>
> (हुंकार से उद्धृत)

विद्यार्थी जीवन म ही दिनकरजी ने मानस म काव्य संस्कार जाग्रत होने लगे थे। इनको अपने गाँव से दूर पढ़ने जाना पड़ता था। इसी अनुभव ने आपको संवेदनशील अनुभूति प्रवण अध्यवसायी तथा विद्यानुरागी बनाया था। कवि के शब्दों म— 'मेरा गाँव गंगा के उत्तरी तट पर बसा है और जिस माध्यमिक स्कूल म पढ़ता था वह मोकामाघाट स्कूल गंगा के दक्षिणी तट पर अवस्थित है। स्कूल म हाजिर होने के लिए मुझे रोज गाँव से चलकर घाट तक जाना पड़ता था और पैसेंजर या माल जहाज से गंगा पार करना पड़ता था। मेरे गाँव से जहाज घाट बरसात के दिनों म दो मील की दूरी पर होता था लेकिन बाकी मौसम म वह चार पाँच मील तक दूर हट जाता था।'[1]

अपने विद्यार्थी जीवन की घटनाओं से ही दिनकरजी हिन्दी प्रेमी हो गए थे। हिन्दी भाषा के साहित्य की दरिद्रता दिनकरजी के सम्मुख विद्यमान थी। दिनकर जी ने इस सम्बन्ध म एक घटना का उल्लेख किया है— मैट्रिक म हिन्दी म मैंने विश्वविद्यालय म प्रथम स्थान प्राप्त किया था और मुझे भूदेव हिन्दी मैडल नामक एक पदक भी प्राप्त हुआ था। जब मैंने पटना कालेज म आई० ए० मे नाम लिखवाया मैंने सोचा कि एक विषय हिन्दी भी रख लू लेकिन प्रिंसिपल हान ने मुझे हिन्दी लेने की इजाजत नहीं दी। आई० ए० पास करने के बाद जब मैं बी० ए० म पहुचा, मैंने फिर कोशिश की कि प्रिंसिपल पेपर म हिन्दी ले लू।' इस बार प्रिंसिपल की जगह पर मिस्टर लेवट ने विषाक्त स्वर म उद्धत कहा भले ही तुम हिन्दी म सर्वप्रथम हुए हो मगर अंग्रेजी म तो नहीं। हिन्दी भाषा का साहित्य दरिद्र है मैं इस साहित्य को प्रोत्साहन नहीं दे सकता।'[2] उपर्युक्त घटना ने एक स्वाभिमानी व्यक्तित्व को झकझोर दिया और उन्हें हिन्दी का प्रेमी बना दिया। दिनकरजी पर इतिहास की घटनाओं का भी गहरा प्रभाव पड़ा। जब कवि का व्यक्तित्व उभर रहा था उसी समय विश्व व्यापी क्रांतिकारी विचारधाराओं ने अपना प्रभाव दिनकरजी पर डाला। विद्यार्थी

१ सम्पादक श्री प्रतापचन्द्र जैसवाल—राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, पृ० ८
२ वही, पृ० ६

जीवन में ही दिनकरजी ने बिहार तथा बगाल के युवकों द्वारा क्रांतिकारी वातावरण को समीप से देखा था। कवि के शब्दों में— राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नही जन्मी उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि दिनकरजी के काव्य में क्रांतिमत चेतना का प्रादुर्भाव विद्यार्थी जीवन में ही (बिहार क्रांति) से पनपा। बिहार की विद्रोही राष्ट्रीय चेतना के अग्निमय वातावरण में उनके कवि व्यक्तित्व का निर्माण हुआ।[2]

व्यवसाय एवं कार्य क्षेत्र

अर्थाभाव ने दिनकरजी को व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश करने को बाध्य किया। सन १९३२ में बी० ए० आनर्स में करने के पश्चात दिनकरजी पूर्णरूपेण गृहस्थ जीवन में उतर आए थे। एक स्कूल में हैडमास्टर का पद मिला परन्तु ब्रिटिश सरकार के पक्षपाती जमींदारों से इनका पाला पड़ा। जिनसे इनके राष्ट्रीय भावों को ठेस लगी, इसको यह सहन नही कर पाए। इसके बाद इन्होंने कभी सरकारी नौकरी की तो कभी प्राईवेट नौकरी। सरकारी नौकरी में प्रवेश करने पर दिनकर जी को स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने काफी रोका परन्तु राष्ट्रद्रष्टा सौम्य के धनी युगधर्म चेता युग का पुरूरवा अलौकिक काव्य प्रतिभा के धनी दिनकर कब रुकने वाले थे? अनेक संघर्षों से जूझते हुए सफलता के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। एक ओर क्रांति और विद्रोह के उदघोष उनके कंठ से निर्गत होने के लिए मचल उठते थे और दूसरी ओर सरकारी नौकरी होने के कारण दमन चक्र में भी उनको पिसना पड़ता था। सरकार की दृष्टि में वे बागी थे विद्रोही थे।[3] जो भी हो सरकारी नौकरी की विवशता और गुलामी को सेवते हुए भी दिनकरजी ने राष्ट्रीयता का जो सुगम्भीर, निर्भीक एवं रागात्मक उद्घोष किया वह विशेष रूप से द्रष्टव्य है। रणुका हुंकार और सामधेनी की कविताओं ने हिन्दी प्रान्तों में देशभक्ति की लहरें उठाने में बड़ा भारी योगदान किया था और ये कवितायें एक ऐसे कवि की लेखनी से आती थीं जो खुद सरकार के चंगुल में था इसलिए उनकी अपील कुछ और जोरदार थी।[4]

दिनकरजी भारतीय साहित्य जगत में एक अभूतपूर्व व्यक्तित्व को धारण किये अवतरित हुए थे। साहित्य सृजन के अतिरिक्त वे हमारे सामने वक्ता, विचारक तथा हिन्दी सेवी के रूप में आये। दिनकर की काव्य-यात्रा की कहानी बड़ी अदभुत और विचित्र रही है। मूलतः वह राष्ट्रीय भावों के संवाहक प्रगति के चितेरे और मानवतावादी विचारों को कवितावद्ध करने वाले प्रतिभावान कवि थे। उनके समस्त साहित्य में राष्ट्रीयता और मानवता के भावों का मधुर मिलन है किन्तु आश्चर्य यह

१ हरप्रसाद शास्त्री—दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ० ३४
२ डॉ० सावित्री सिन्हा—दिनकर पृ० २३२
३ दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० ४४
४ आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि—रामधारीसिंह दिनकर पृ० २५

है कि क्रांति का यह चितेरा कभी अंगारों पर चलने का संदेश देता रहा है और कभी कोमल कुसुमों की शय्या पर जीवन के मादक सपने सँजोने की प्रेरणा देता है। एक ओर वे 'कुरुक्षेत्र', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'द्वन्द्वगीत', 'रेणुका' तथा 'हुंकार' जैसी क्रान्तिमय चेतना से ओतप्रोत काव्य लिखते हैं तो दूसरी ओर 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' जैसे काव्यों के कथानक में काम, आकर्षण एवं सौंदर्य का मनोवैज्ञानिक स्पन्दन करते हैं। एक ओर पौरुष के अवतारी परशुराम हैं तो दूसरी ओर शृंगारी भाव। उनका पौरुष विशाल मानवता के परिवेश में ही व्यक्त हो सका है। यही वस्तुस्थिति उनको एक जनवादी कवि बनाने में सहायता देती है।[1] दिनकरजी ने काव्य के दोनों रूपों—प्रबंध तथा मुक्तक में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। मुक्तक काव्य हैं—'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवन्ती', 'सामधेनी', 'द्वन्द्वगीत', 'कोयला और कवित्व', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'बापू', 'इतिहास के आँसू' आदि। प्रबंध काव्य हैं—'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी'। गद्य में दिनकरजी ने 'संस्कृति के चार अध्याय', 'मेरे समकालीन' आदि ग्रंथ लिखे हैं। साथ ही उन्होंने मेरी यात्राएँ, जिसमें—रूस, पोलैण्ड, जर्मनी, मिस्र, चीन, मारिशियस की यात्रा का वर्णन है। 'भारतीय एकता', 'लोकदेव नेहरू', 'राष्ट्रभाषा आंदोलन और गांधीजी' आदि गद्य लेख भी लिखे हैं। इस प्रकार दिनकरजी के कृतित्व-क्षेत्र का विश्लेषण करें तो वह बहुत व्यापक परिलक्षित होता है।

पुरस्कार, सम्मान, पदवियाँ

दिनकरजी आधुनिक भारतीय साहित्य परम्परा में राष्ट्रीय भावना के सजग प्रहरी थे। आपकी प्रेरणा से देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक जागृति का उदय हुआ। काव्य में एक नया युग आया और छायावादी काव्य की रूमानियत का कुहरा हटने सा लगा। सन् १९५९ में दिनकरजी को राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की गयी। १९६३ में 'साहित्य अकादमी' विश्वविद्यालय से 'डॉक्टर ऑफ लिट्रेचर' की उपाधि प्राप्त की। 'नागरी प्रचारिणी सभा' का 'द्विवेदी पदक' दिनकरजी को दो बार मिला। उन्हें न केवल स्वदेश में सम्मान मिला वरन् विदेशों से भी सम्मान प्राप्त हुआ। जापान के पत्र Orient West में 'कलिंग विजय' कविता का अनुवाद प्रकाशित हुआ। United Asia में उनकी आठ कविताओं के अनुवाद छपे। सन् १९६३ में 'विदेशी साहित्य ग्रंथमाला' में उनकी कविताओं का रूसी अनुवाद छपा। ज्ञानपीठ पुरस्कार उनके 'उर्वशी' महाकाव्य पर प्रदान किया गया। उन्होंने राज्य सभा की सदस्यता, विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर एक विश्वविद्यालय में कुलपति का गौरव प्राप्त किया। १९३५ में दिनकरजी ने बिहार प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन के साथ होने वाले कवि-सम्मेलन का सभापतित्व किया था। अन्त में डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित हुए।

1 कवि दिनकर व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० ४७

संघर्षमय रचनाधर्मी जीवन की लीला का अन्त

दिनकरजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन संघर्षमयी स्थितियों में बिताया। इनका जैसा संघर्षमय जीवन बिताना पड़ा वैसा हिन्दी जगत् में शायद ही किसी लेखक या कवि को व्यतीत करना पड़ा हो। छोटी उम्र में ही पिताजी का सिर पर से हाथ उठ गया। माँ का साया टूटा और अन्त में ज्येष्ठ पुत्र का इस नश्वर जगत से चला जाना। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'राष्ट्रकवि दिनकर : कुछ निजी संस्मरण' में दिनकरजी के संघर्षमय जीवन का उन्हीं के एक पत्र द्वारा विवरण प्रस्तुत किया है—"आपने निनानवें के फेर में पड़ने से मुझे रोका था पर वह तो घोर तेज हो गया। जिस परिस्थिति में पड़ गया हूँ उसमें धन के बिना निस्तार नहीं है। अनाथ पोतियों का भार केदार पर डालकर मुक्त साँड बनकर घूमूँ यह कायरता होगी। २४ साल की उम्र में जुए को अपनी गर्दन पर लिया था और ७४ तक वचा तो गर्दन पर वही जुआ मौजूद रहेगा।"[1] वस्तुतः दिनकरजी कुरीतियों का विनाश चाहते थे—प्रगति के पथ पर आरूढ़ होने के लिए वे ऐसा संसार चाहते थे जहाँ न कोई शोषित वर्ग हो न शोषक वर्ग। ऐसी विभूति जो भारतीय हिन्दी साहित्य जगत की अमूल्य निधि थी, २५ अप्रैल १९७४ को नश्वर जगत् से सदैव के लिए विलग हो गयी। महान् व्यक्तित्व को धारण करने वाले कवि पुंगव दिनकर जीवन भर सफलता तथा असफलता के झूले में झूलते रहे। उनकी अन्तिम इच्छा थी कि तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर के दर्शन करें। अतः वे मद्रास गये। दिनकरजी की इच्छा पूरी हुई और २५ अप्रैल, १९७४ की रात्रि को बारह बजे दिवंगत हो गये। संसार को जगाने वाला पौरुष धर्म को धारण करने वाला क्रांतिकारी बलिदान पथ की प्रेरणा देने वाला राष्ट्रकवि हमेशा हमेशा के लिए समाज से कूच कर गया परन्तु उनकी महान सरचना एवं देन के रूप में हिन्दी जगत को ही नहीं वरन् विश्व-साहित्य जगत को प्रेरणा देती रहेगी।

सृजनात्मक व्यक्तित्व के प्रेरणा-स्रोत

कवि समाज में रहता है, वह समाज से प्रेरणा लेता है और उसे प्रेरित भी करता है। कवि की दृष्टि उस युग की परिस्थितियों को आत्मसात् कर उसका काव्यमय वर्णन करती है। साहित्य समाज का खुला दर्पण है क्योंकि साहित्य युग की भावनाएँ विचार तथा आदर्श जनता के सम्मुख रखता है। युग की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का उस पर प्रभाव पड़ता है। समाज में चल रही कुप्रथाओं का समाधान कवि करता है। वह अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को सुधारता है। इतिहास की गतिविधि से उनको प्रेरणा तो मिलती है पर अतीत के प्रति ऐसा मोह नहीं जगता जो उन्हें वर्तमान के अनुभवों के संबंध में कुछ बाधा पहुँचाये। वर्तमान भी उनके लिए इतना ही प्रेरणादायक है जितना अतीत। अतीत तो

१ जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (सं.)—दिनकर : व्यक्तित्व एवं कवित्व (श्री बनारसीदास चतुर्वेदी—राष्ट्रकवि दिनकर के कुछ निजी संस्मरण से उद्धृत), पृ० २९

वस्तुत उनके लिए वतमान को समझने की दृष्टि मात्र है। वतमान का यह आग्रह और उसके साथ कवि का विचार और भावमिश्रित तादात्म्य उनके व्यक्तित्व का अन्य राष्ट्रीय कवियों के व्यक्तित्व से पथक कर देता है।[1]

दिनकरजी पर तुलसी और कबीर का प्रभाव भी था। उनके संस्कार तुलसी और कबीर की सहज गम्भीरता तथा प्रमाद के गुण आदि थे।'[2] उनम बचपन से ही मानस पढ़ने की रुचि जागत हो चुकी थी। तुलसी समन्वयवादी थ, यही प्रेरणा दिनकरजी को मिली। मानस' भक्ति प्रधान होते हुए भी उसके भावों की गूढ़ता तथा गम्भीरता ने दिनकरजी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उन्हीं के शब्दों म— 'जहा तक कविता का सबध है मैंने प्रेमपूर्वक पहले पहल तुलसीकृत रामायण पढी थी।[3] दिनकर की कविता मे सामाजिक वैषम्य, आर्थिक शोषण राजनीतिक हलचल सवत्र सुनाई देती है। कवि स्वय स्वीकारते हैं कि— मेरी कविताओ के भीतर जो अनुभूतिया उतरी वे विशाल भारतीय जनता की अनुभूतियाँ थी।"[4]

दिनकरजी पर पूववर्ती एव समकालीन रचनाकारो की भी प्रेरणा स्पष्ट दिखाई देती है। आधुनिक युग म क्रान्तिकारी कवियो के प्रतिनिधि के रूप म भी दिनकरजी हमारे सम्मुख आते है। इनकी रचना म समन्वय भी परिलक्षित होता है। एक तरफ क्रान्तिकारी राष्ट्रीय चेतना है तो दूसरी तरफ कोमल कल्पनाएँ हैं। उनके काव्य म एक ओर द्विवेदीकालीन काव्यगत सरलता स्पष्टता तथा स्वाभाविकता है तो दूसरी ओर छायावादी काव्यानुभूति विचार-तत्त्व तथा युगबोध मिलता है। सस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गजन-तजन से दूर रहू और केवल ऐसी ही कविताए लिखू जिसम कोमलता और कल्पना का उभार हो।[5] दिनकरजी को भारतेन्दु मथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी सुभद्राकुमारी चौहान माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन स भी साहित्य रचना करने की प्रेरणा मिली। उन्हे अग्रेजी कवियो म शेले, वडसवथ तथा भारतीय कवियो मे रवीन्द्रनाथ तथा इकबाल से प्रेरणा मिली। व कहते हैं कि— स्कूल म कभी-कभी सरस्वती सुधा' और माधुरी के अक मिल जाते थे किन्तु 'मतवाला' मैं नियमित रूप से पढता था। छायावाद की कविताए मेरी समझ म कम आती थीं और अक्सर काव्य प्रेमी मित्रों से बात करते समय मैं इन कविताओ का विरोध ही करता था।'[6]

बाल्यकाल से ही दिनकरजी एक कवि सुलभ व्यक्तित्व को धारण किये हुए थ। इन पर 'पथिक' का अत्यधिक प्रभाव पडा था। चक्रवाल म उन्होंने स्वीकार

१ कवि दिनकर व्यक्तित्व और कतित्व पृ० ४८
२ यशचारण दिनकर पृ १८
३ दिनकर—चक्रवाल भूमिका पृ० २४
४ चक्रवाल—भूमिका पृ० ४३
५ वही पृ० ३३
६ वही, पृ० ३

किया है कि—'पथिक मुझे इतना पसन्द आया जितना और कोई ग्रन्थ नहीं रचा था। उन्हीं दिनों मैंने पथिक के अनुकरण पर वीरबाला और जयद्रथ वध' के अनुकरण पर 'मेघनाथ वध ये दो खण्डकाव्य लिखने आरम्भ किये थे।'[1] कविता लिखने की प्रेरणा का प्रथम चरण था—रामलीला और नाटक छात्र सहोदर' नामक पत्रिका पढ़ने से भी दिनकरजी को काफी लाभ हुआ। वे लिखते भी हैं— मैं हर महीने इस पत्र की राह बड़ी आतुरता से देखता और महीने का अंक मिलते ही उसमें प्रकाशित सब पद्यों को चाट जाता। संयोग ऐसा कि इस पत्र की भी सारी कविताएँ राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थीं। प्रताप नामक पुस्तक के विषय में दिनकरजी लिखते हैं कि—आज से २५ वर्ष पूर्व जब प्रताप में भारतीय आत्मा की तिलक शीर्षक कविता छपी थी मैं कोई १० १२ साल का था किन्तु मुझे भली भांति याद है कि वह कविता मुझे अत्यन्त पसन्द आयी थी और मैंने उसे कण्ठस्थ कर बहुत लोगों को सुनाया भी था। आगे चलकर मेरी मनोदशा के निर्माण में उस तथा भारतीय आत्मा की अन्य कविताओं ने बहुत प्रभाव डाला।'[2]

आर्य समाज के प्रवर्तक दयानन्द का भी प्रभाव दिनकरजी पर दृष्टिगत होता है। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि—' जिस प्रकार मैं हिमालय और हिन्द महासागर का ऋणी हूँ उसी प्रकार रवीन्द्र इकबाल और दूसरे कवियों का ऋण भी मुझ पर है।'[3] दिनकरजी का राष्ट्रीय काव्य लिखने की प्रेरणा तिलक और गांधी से मिली। हालांकि दिनकरजी ने गांधीजी के अहिंसावाद' की पर्याप्त आलोचना की है फिर भी अपने समन्वयवादी स्वभाव के कारण इनके प्रभाव से अछूते न रह सके। वैसे तो राष्ट्रीयता का प्रथम उन्मेष सन १८५७ के विद्रोह में ही हो चुका था किन्तु सन १८८५ के राष्ट्रीय कांग्रेस' के जन्म एवं तिलक की स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की उद्घोषणा के थपेड़ों से वेग पकड़ती हुई गांधीजी के असहयोग आन्दोलनों के रूप में सुलगते-सुलगते वही सन् १९४२ में विध्वंसक ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ी।'[4] दिनकरजी इतिहास के विद्यार्थी थे। अतः क्रान्तिकारी घटनाओं की प्रेरणा उन्हें इतिहास से मिली।

तत्कालीन भारत की कुव्यवस्था ने भी दिनकरजी को प्रेरित किया। कांग्रेस के दो दल — गरम नरम दल बन चुके थे। एक तरफ भारतीय कांग्रेस के नेतृत्व में भारतीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन पूरे वेग पर था और दूसरी ओर जनमानस में क्रान्ति का बीज बोने वाले—खुदीराम बोस चन्द्रशेखर आजाद बिस्मिल और भगतसिंह। एक तरफ थे सुभाषचन्द्र बोस और तिलक तो दूसरी तरफ शांति व्यूह में

१ चक्रवाल—'भूमिका से उद्धृत
२ दिनकर—मिट्टी की ओर पृ० १८५
३ दिनकर—रेणुका भूमिका से उद्धृत
४ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य-साधना पृ० ४१ (डॉ० भगवतीनारायण त्रिपाठी के लेख से उद्धृत)

सगठित गाधीजी का दल। नजरुल इस्लाम तथा मथिलीशरण गुप्त की क्रातिकारिता तथा ओजस्विनी वाणी स प्रेरित होकर दिनकरजी शाति के विरोधी बन बैठे और उनके काव्य म विद्रोह की ज्वाला धधक उठी। उनका कवि बोल उठा कि—

'शृग छोड मिट्टी पर आया किंतु वहो क्या गाऊ मैं ?
जन्म बोलना पाप बना क्या गीतो स समझाऊ मैं ?
विधि का शाप मुरभि माथा पर लिखू चरित म क्या टिका
चौराहे पर बधी जीभ स माल कह चिनगारी का।'[1]

आधुनिक युग म क्राति का बीज बोने का श्रेय चिंतको को अधिक है। इन चिंतको म—बेकन, रूसो, हॉब्स, काल मार्क्स टालस्टाय और गाधीजी प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त विश्व की महान क्रातिया म उल्लेखनीय ह—अमरीकी क्राति औद्योगिक क्राति फ्रासीसी क्राति रूसी क्राति, भारतीय इतिहास की क्राति आदि। धार्मिक जागरण की प्रेरणा दिनकरजी पर परिलक्षित होती है। उन्होंने अपनी कविताओ म युग के अनुरूप धम क क्रातिकारी तत्वो का अकवपण किया। दिनकरजी ने कहा कि आज हिंदू बौद्ध जन ईसाई यहूदी इस्लाम आदि धर्मों का महत्व नहा जितना कि विश्व एकता म है। लाक प्रथम क्रातिकारी विचारक के रूप मे हमारे सामन आते है। इन्होने साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्राति की आवाज उठायी थी। यही प्रतिशोध की भावना कवि दिनकर म पल्लवित हो गई थी। कवि कहते हैं—

'है कौन जगत म, जो स्वतत्र जन सत्ता का अवरोध करे,
रह सकता सत्तारूढ कौन जनता जब उस पर क्रोध करे।'[2]

दिनकरजी का साहित्य जगत म उदय तब हुआ जब ब्रिटिश साम्राज्य के चगुल म भारत परतत्रता की बेडिया में जकडा हुआ था। तब साम्राज्यवाद के विरुद्ध नारे लगाने वाल रूसो लाक तथा हाब्स का प्रभाव दिनकरजी पर पडा और व कह उठे कि—

अन्य विषमता के विरुद्ध ससार उठा है
अपना बल पहचान लहर-कर पारावार उठा है।
छिन्न भिन्न हो रही मनुजता के बधन की कड़ियाँ
देश देश म बरस रही आजादी की फुलझड़ियाँ।'[3]

काल मार्क्स का प्रभाव भी दिनकरजी पर प्रत्यक्षत देखन को मिलता है। क्रूर शासको के विरोध में क्राति की स्वीकृति काल मार्क्स न ही दी। मार्क्स के सिद्धान्तो का प्रभाव कुरुक्षेत्र छन्दो में मिलता है। मार्क्स का प्रारम्भिक साम्यवाद 'प्रिमिटिव कम्यूनिज्म' का सिद्धात दिनकरजी को भी मान्य है क्योकि वे कहते हैं कि—

१ हुकार मामुख पृ २
२ नीम के पत्त पृ० ८
३ सामधेनी पृ १६०

विना विघ्न जल अनिल सुलभ है आज सभी को जस
कहत हैं थी सुलभ भूमि भी कभी सभी को वस।"[1]

कालमावस के विचारो का सर्वाधिक प्रभाव दिनकरजी के काव्य में परिलक्षित होता है। पूजीपति वग द्वारा शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के बीज भी मार्क्स ने बोये थ जिसका समथन दिनकरजी ने किया। व कहत भी है कि —

वभव की मुस्कानो में थी छिपी प्रलय की रेखा।[2]

श्रम की महत्ता को भी दिनकरजी ने स्वीकारा है। व कहते हैं—

रोटी उसकी जिसका अनाज जिसकी जमीन जिसका श्रम है
आजादी है अधिकार परिश्रम का पुनीत फल पाने का।[3]

इस प्रकार हम देखत हैं कि दिनकर के साहित्य के अनकानेक सृजनात्मक प्रेरणा स्रोत है। विश्व की महान क्रान्तियो विचारको और शीर्षस्थ साहित्यकारो के अतिरिक्त पुराण और इतिहास के अनुप्रेरक प्रसगो न उन्हे सदव ही प्रभावित किया इसी का परिणाम यह हुआ कि व निरन्तर सघषशील और जुझारू भगिमा अपनाये हुए काव्यकृतियो का प्रणयन करत रहे। उनकी रचनात्मक जागरूकता का इससे बडा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उनकी प्रत्येक रचना म युगधम का महान् उदघोष सुनाई देता है।

कृतित्व परिचय

दिनकरजी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

रेणुका

'रेणुका' का प्रकाशन सन् १९३५ म हुआ। 'रेणुका' मे क्रान्ति का जो स्वर हमे मिलता है उसम वीर भगतसिंह के शिष्यों का श्रद्धाभाव सन्निहित है। 'रेणुका' म अतीत के प्रति प्रबल आकषण है तो वतमान परिवेश की नीरसता भी है। रेणुका म राष्ट्रीय भावधारा को व्यक्त करने वाली दो-तीन रचनाएँ हैं। बाकी उस सग्रह म ऐसी ही रचनाओ का प्राधान्य है जिनम या तो भारत के अतीत का रोना है या जीवन की नश्वरता पर विलाप और ये दोनो गुण छायावादी सस्कार स आये थे।[4] राष्ट्रीय भावनाओ का प्रमुख स्वर भी रेणुका की कविताओ म मिलता है। अतीत वतमान तथा राष्ट्रीय भावनाओ क समन्वय स हो यह कृति प्रसिद्ध हुई है। इस सग्रह म राष्ट्रीय चेतना को उभारने वाली कविताए हैं— हिमालय, ताडव कविता की पुकार बोधिसत्व वस्म दवाय', मिथिला पाटलीपुत्र की गगा स, 'बागी'

१ कुरुक्षेत्र (१४वां सस्करण) पृ ३६
२ इतिहास के आँसू वभव की समाधि पृ ८८
३ नीम के पत्ते और स्वाधीनता पृ ५
४ चक्रवाल पृ० ३२

आदि। दिनकर ने सत्य ही युद्ध को वरेण्य विषय माना है तथा शांति को त्याज्य कहा है। 'हिमालय और कस्मै देवाय' म क्रांति की आवाज लेनिन की चिंगारियों की तरह बुलन्द है। वस 'रेणुका' म वग सघष और मनुष्य नवयुग की चतना क्रांति के बीज, नारी प्रेम सौ दय निराशा निर्वेद पलायन आदि सभी प्रकार के भाव देखने को मिलते है।

जहाँ तक सौन्य चेतना का प्रश्न है दिनकर लौकिक प्रतिपाद्यो को छोडकर परियो के देश म पहुच गए हैं।[1] यही सौन्दय चतना कभी रहस्याश्रित होकर विश्व छवि[2] क रूप म उभर आती है। रहस्यवाली शैली म "कौन ? किसका ?"[3] जैसे प्रश्न कवि के सामन उभरत हैं। यथा—

"कर रही व्योम म अवगाहन
रनझुन रनझुन किसका शिजन ?"[4]

हुकार

हुकार' का य सग्रह सन १९३९ ई० मे प्रकाशित हुआ था। 'हुकार' मे क्रांति का आह्वान है। हुकार म इसी क्रांति की देवी और युग के देवता की पूजा के गीत है।[5] इस हुकार का ज म उसके हृदय की गहरी व्यथा स हुआ है। उसी व्यथा स जो वशाली के भग्नावशेष मिथिला के भिखारी वेश चित्तौर का ज्वाल-वसन्त और बलियो का अत देखकर सिसकी भर भर सिहर उठी थी।[6] उस समय की राज नतिक दासता जन-जीवन म उत्पीडन के करुण क्रन्दन का नग्न चित्र देखकर क्रांति का स्वरूप हुकार' म और भी स्पष्ट हो जाता है। 'हुकार' म कवि वतमान के प्रति विशेष सजग है। वतमान की बुढाए कुटिल विष की भाति कवि की चेतना को झकझोर डालता हैं। हुकार मे कवि दीनता और विपन्नता के प्रति अधिक दयाद्र हो उठा है। शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। निराशा निर्वेद, पलायन और वग सघष का स्वर भी हुकार म मुखरित हुआ है। यथा—

व भी यहीं दूध से जो अपन स्वानो को नहलाते हैं,
य बच्चे भी यहीं कब्र म जो दूध दूध चिल्लाते है।"[7]

'हुकार म सकलित रचनाए हैं—दिगम्बरि, विपथगा, अनलकिरीट, स्वग दहन, हाहाकार, हिमालय आदि।

१ रेणुका प० ९८ ९९ विधवा शीर्षक कविता से उद्धत
२ ययवारण दिनकर, प० ८४
३ रेणुका प० ५३
४ वही प ९८
५ प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव—युग कवि दिनकर पृ ६३
६ प्रो० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता मे क्रांति युग प० ३०८
७ हुकार पृ ६७

रसवन्ती

'रसवन्ती' सन् १९४० ई० म प्रकाशित हुई। इसम प्रेम तथा शृगार का वणन अधिक है। इसकी रचनाएँ रूमानी विचारधारा पर आधारित है। 'नारी' कविता म नारी-सौन्दय का चित्रण किया गया है। नारी बालिका स वधू बनती है। यह वधू लोक में भिलमिला रही है। कवि न अपनी जीवन प्रेरणा के नारीगत स्रोत की अभ्यथना की है—

'आरती करने को सुकुमारी
इन्दु को नर ने नी अवतार।' [1]

कवि नारी के देवी रूप को भी इस काव्य में भुला नहीं पाया है। कहीं वह नारी में मा की ममता देखता है तो कहीं बहन का प्यार तो कहीं देवी रूप। कुल मिलाकर रसवन्ती की शृगार भावना में मन की कोमल मधुर वृत्तियों को ही प्रस्थापित किया गया है। शारीरिकता की स्वीकृति उसमें बहुत कम है। इसीलिए उसम तीव्रता और उत्कृष्टता न होकर माधुय और सात्विकता है।[2]

द्वन्द्वगीत

इसम सन् १९३२ स १९३६ तक की रचनाए सकलित हैं। इसके माध्यम म कवि के विविध विचारों का प्रकाशन हुआ है परन्तु मुख्यत आस्था-अनास्था युग द्वन्द्व का द्वन्द्वमय वणन ही हुआ है। यहा कवि दाशनिक आधार पर पहुच कर जीवन को नश्वर और क्षण भगुर मानता है। कवि की दृष्टि म सुन्दरता म ही असुन्दरता तथा यौवन म ही वृद्धावस्था के दशन होते हैं। ऐसा लगता है कि दिनकरजी पर जातक कथाओं का भी प्रभाव है। यौवन की क्षणिकता पर व्यग्य करते हुए कवि कहता है कि—

दो काजर का छिपा रही
मस्तानी आखें लाज भरी
अथि तनु पर ही ता है
म खिले कुसुम स गाल सरस
और कुचों क कमल ! कहेंगे
य ता यौवन म पहले
कुछ थाड़ा सा मांग प्राण का
छिपा रहा क्यान सभी।[3]

1 रसवन्ती प १५
2 युगचारण दिनकर पृ १८४
3 द्वन्द्व गीत उद्ध

सामधेनी

'सामधेनी' मे सन् १९४१ से १९४६ तक की रचनाए सकलित हैं। सन् १९४४ में राष्ट्रीय नेताओ के जेल में ठूसे जाने पर दिनकरजी का स्वर अत्यन्त उग्र हो गया। वे कहते हैं—

"सुलगती नही यज्ञ की आग, दिशा धूमिल यजमान अधीर।
पुरोधा कवि कोई है यहा, देश को दे ज्वाला के वीर।'[1]

'सामधेनी की कलिंग विजय' नामक कविता में कवि की सामाजिक चेतना उस समय की स्थिति का अतिक्रमण कर विश्व चेतना का अनुभव करती सी जान पडती है। सामधेनी जिस समय रची गई सबत्र क्रांति की ध्वनि विद्यमान थी। इसी कारण इसका स्वर क्रांति का है। इतना सब होते हुए भी—"इस रचना को क्रांति-पथ के विकास काल में सम्मिलित करना उचित प्रतीत नही होता। सामधेनी में बहुविध दृष्टियाँ ही मिलती हैं। इसकी कुछ रचनाओ में द्वन्द्वमूलक वयक्तिक चेतना के क्षणो को वाणी मिली है जिनमें द्वन्द्वगीत के कवि की प्रेतछाया स्पष्ट है। कुछ कविताओ में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न अवसाद की कालिमा है।[2]

कुरुक्षेत्र

इस प्रबन्ध काव्य की रचना सन् १९४६ में द्वितीय महायुद्ध की भूमिका पर हुई है। द्वितीय महायुद्ध का कवि न महाभारत युद्ध की सज्ञा दी है। कुरुक्षेत्र' आधुनिक युग की गीता है। इसमें दिनकरजी न बताया है कि सन्याम कापुरुषता है। मनुष्य का कर्म-क्षेत्र यह धरती है जहा के अधिवासी मानवता के प्रति अपने कर्त्तव्य का भार उठाकर ही कोई पुण्य कर सकता है। गीता के अनुरूप ही कुरुक्षेत्र' में भी अधिकार के लिए लडना उचित बताया गया है।

कुरुक्षेत्र की रचना म तत्कालीन परिस्थितियाँ प्रतिफलित हो रही हैं। इसकी पृष्ठ-भूमि अन्तराष्ट्रीय धरातल पर द्वितीय महायुद्ध है और राष्ट्रीय धरातल पर स्वतत्रता आन्दोलन के लिए हिंसा अथवा अहिंसा की वरण्यता का प्रश्न है।[3] कुरुक्षेत्र का सदेश है कि युद्ध अनघ है क्योकि शोषण और अन्याय धरती पर निरन्तर चलते रहते हैं। शोषण और अन्याय क विरुद्ध युद्ध करना न तो अधम है न ही पाप। युद्ध में साधन किसी प्रकार के भी अपनाय जा सकत हैं।[4] कुरुक्षेत्र का महत्व न तो प्रबन्ध म है न रसाभिव्यक्ति में और न महाभारत की कथा को नय परिवेश म प्रस्तुत करने में, वरन् उसकी महत्ता एक ऐसी शाश्वत समस्या पर विचार करने में निहित है

१ सामधेनी से उद्धृत
२ कवि दिनकर व्यक्तित्व और कृतित्व पृ १९४
३ प्रतापचन्द जयसवाल—राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना (डॉ० भागीरथ प्रसाद के लेख से उद्धृत) पृ ६८
४ वही (डा० अरविन्द पाण्डेय के लेख से उद्धृत) पृ १२२

जिसे 'युद्ध की समस्या' कहा जाता है और जो प्राचीन और नवीन दोनों की है, साथ ही उसकी महत्ता सशक्त विचाराभिव्यक्ति में भी है। जिस माध्यम से कवि ने मानव को कर्मवाद का सन्देश दिया है और न्याय के लिए लडने की बात बार बार दोहरायी है।[1] कुरुक्षेत्र में तमाम चिन्तन का फल यही निकलता है कि मनुष्यता ही सत्य है विद्वेष कलह का प्रसार होते हुए भी वह सब अनित्य है। सत्य का स्रोत कर्म की भूमि छोड कर समाधि की अवस्था में नहीं मिल सकता। मनुष्य का गौरव श्रम करने में है श्रम से ही समाज का संगठन हुआ है।[2] कुल मिलाकर कुरुक्षेत्र में दिनकर की दृष्टि विभ्रान्त और स्पष्ट हो गयी है। समष्टिमूलक और वैयक्तिक दोनों ही दृष्टिकोणों में कहीं अस्वस्थमूलक तत्वों के निराकरण और कहीं विरोधी तत्वों के सामंजस्य के द्वारा वे स्थायी निष्कर्षों पर पहुंच गये हैं।'[3]

रश्मिरथी

यह सन १९५१ ई० में लिखा गया सात सर्गों का प्रबन्ध काव्य है। इसमें कर्ण के जीवन की यशोगाथा है। रश्मिरथी में कर्ण एक उज्ज्वल एवं महान् पात्र है जो विधि का मारा एवं विधि से वंचित होकर भी अपने पुरुषार्थ से विघ्न बाधाओं को लात मारकर अपने मार्ग को प्रशस्त करता है और अन्त में एक शूरवीर साहसी योद्धा के रूप में अपना वर्चस्व प्रस्थापित करता है। जिस कर्ण धर्म के प्रसार का संदेश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है वह हमारे युगजीवन एवं समाज की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा वाछनीय है।[4] रश्मिरथी में कवि का स्वर जाति, वर्ग, कुल आदि को मानवता के मार्ग में बाधक के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता है।

डा० सावित्री सिन्हा का मत है कि—"विचारों और भावों के ऊहापोह उत्थान और संशोधन परिवर्तन के द्वारा दिनकर जी ने जिस सैद्धान्तिक जीवन दृष्टि का निर्माण किया था, कर्ण के व्यक्तित्व में उन्हीं को उत्तर दिया। शौर्य और शील का समन्वय कर्मचारी जीवन दृष्टिकोण जागृत अहं अग्निमय प्रतिशोध दिनकर के अपने आदर्श पुरुष की कल्पना है तथा दानवीरता मैत्री निर्वाह और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि गुण उन्होंने परम्परा से ग्रहण किये हैं।

नीलकुसुम

नीलकुसुम १९५४ ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह है। इसकी कविताओं में कवि दिनकर ने सामाजिक तथा दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्त किया है। सामाजिक

१ हरिचरण शर्मा—समीक्षा और मूल्यांकन पृ० ३२०
२ डॉ० रामविलास शर्मा—प्रगति और परम्परा पृ० १७५
३ युगचारण दिनकर पृ० १३८
४ डॉ० देवराज उपाध्याय—हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन, पृ० ४३०

दृष्टिकोण ही हिन्दी काव्य की प्रगतिशील धारा को एक सीमा तक मूतरूप प्रदान करता रहा है। स्वप्न और सत्य' तथा 'नतकी' शीषक कविताओं म समाविष्ट चिन्तन का रूप दृष्टिगत होता है। इसमें कवि प्रयोगोन्मुख हो गया है। 'स्वप्न तथा सत्य म दिनकरजी का मूल स्वर कल्पना से यथाथ की ओर उन्मुख हो गया है। कल्पना की कोमल धरती को त्याज्य बता कर कवि म ठोस धरातल पर चलन का आग्रह किया है तथा देशोद्धार की कामना की है। गगन मे घूमने वाला को कवि उपेक्षा की दृष्टि स देखता है।

'नीलकुसुम मे सन १९४६ से १९५४ के मध्य रची गई रचनाए हैं। यह समय मवसहारक विभीषिका का काल था। भारत की जनता को पराधीनता स मुक्ति मिलने की खुशी हासिल भी न हान पाई थी कि शोषण की जजीर ने घर दबाया और जनता फडफडा कर रह गई। इसी समय नीलकुसुम' की रचना हुइ। कवि ने इस कृति म व्यक्ति और समाज, जीवन और मत्यु हिंसा और अहिंसा, कल्पना तथा यथाथ को स्वर दिया। 'ये गान बहुत रोय नामक कविता म कवि ने रहस्यवादी भाव अभिव्यजित किये हैं। इस कृति की प्रमुख कविताए हैं— युद्ध और शांति' व्यष्टि और समष्टि', रोटी और सस्कृति' आदि। नीलकुसुम के प्रतिपाद्य को मुख्य रूप से चार भागा म विभाजित किया जा सकता है—

(१) युग प्रेरित शांतिवादी और मानवतावादी रचनाए।
(२) विचार प्रधान सामाजिक और व्यक्तिवादी रचनाए।
(३) जिज्ञासा प्ररित दाशनिक रचनाए।
(४) स्फुट कल्पनाप्रधान शृगारिक रचनाए।'

धप और धुआ

इसमे कवि की आशा निराशा की भावना समन्वित रूप म प्रकट हुई है। इन कविताओ की रचना शली प्रयोगवादी है। सभी कविताआ म गाधीवाद पर व्यग्य किया गया है। इनका रचनाकाल सन् १९५३ ई० है।

बापू

दिनकरजी की दृष्टि म महात्मा गाधी महान व्यक्तित्व को धारण करने वाले थे। बापू' नामक कृति मे दिनकर ने बापू के महिमामय व्यक्तित्व को ही उभारा है। इसमें एक प्रकार स काव्य श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। इसकी रचना सन १९४७ म हुई थी। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दा म— सापो की बाजी पर घूमत हुए दूध और मिट्टी से बने हुए पुतल की अद्भुत सफलता ने दिनकर की कलम को उसका गुणगान करने के लिए बाध्य किया। साम्प्रदायिकता की घृणा और आग मे श्रद्धा, विश्वास क्षमा और करुणा की पूजी लेकर नि शस्त्र घूमन वाला गाधी पशुबल पर मनोबल की

१ युगचारण दिनकर पृ० १५२

जीत का प्रतीक था। अ धकार और घणा पर सत्य और करुणा की विजय का प्रमाण था।'[1]

कोयला और कवित्व

इस रचना का प्रकाशन सन १९६४ म हुआ। इसम ४० कविताए हैं। कोयला और कवित्व' नामक कविता सबस बडी रचना है। इसी के आधार पर नामकरण हुआ है। इन कविताओ म नय विचार परिलक्षित होते हैं। इसम कला एव धम के सामजस्य पर बल दिया है। यह कविता केवल उपयोगितावाद की ही नही बल्कि कवि की कला दष्टि को भी अधिक स्पष्ट करती है। छन्द भाषा अलकार आदि की दष्टि स भी इसका महत्व है। यह प्रन्थ तत्व के आधार पर लिखी गयी है। इस सग्रह म अ य ४१ कविताए हैं जो शुद्ध मुक्तक क रूप म हैं। दिनचर्या नामक कविता मे राजनीतिक विचार प्रकट किये गए है। इसका महत्व पार्लियामेंट म होन वाली तक पद्धति के कारण है। कवि अभी भी समाजवादी विचारधारा स प्रभावित है। कवि की मान्यता है कि— सोशलिस्ट ही हू लकिन कुछ अधिक जरा देशी हू।' कोयला और कवित्व म नयापन और निखार है। कवि एक बार पुरानी और नई कविताओ के मध्य खडे होकर दोनो ओर देख लेते हैं फिर नय की ओर चल पडत हैं। शीर्षक शिल्प और वस्तु की दष्टि स कोयला और कवित्व की कविताए नीलकुसुम की कविताओ स अधिक नयी हैं। दृष्टि और अधिक बौद्धिक हो गई है तथा मानवतावाद अधिक तलस्पर्शी हो गया है।

परशुराम की प्रतीक्षा

परशुराम की प्रतीक्षा सन १९६२ ई० म लिखी गई। यह भारत चीन युद्ध पर आधारित कृति है। यह कृति अठारह कविताओ का सग्रह है। इसकी पहली और सबस लम्बी कविता परशुराम की प्रतीक्षा' है। यह कविता प्रस्तुत सग्रह के ८० पष्ठो मे से ३२ पष्ठ घेरे हुए है। सम्पूर्ण सग्रह का अन्य कविताओ का नामकरण अलग-अलग किया गया है। जस— ऐनार्की, आपद्धम आदि। परशुराम की प्रतीक्षा' नामक कविता की पष्ठभूमि भारत पर चीनी आक्रमण की घटना है। इस कविता के लेखन और प्रकाशन का उद्देश्य देश के नौजवानो को देश की रक्षा के लिए अनुप्रेरित करना है। इसके अतिरिक्त भी समर शेष है एक बार फिर स्वर दो जसी कविताए भी राष्ट्रीय भावना और क्रातिमत चेतना की हैं। वास्तव म इस सग्रह का लक्ष्य स्वातन्त्र्योत्तर भारत म फली हुइ अराजकता शोषण राजनीति भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध जनता को उदबोधन प्रदान करना है। कुछ कविताओ म भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित वीरगति प्राप्त करन वाले सनिको की प्रशसा कर उनके

१ युगचारण दिनकर पृ० १४३
२ दिनकर व्यक्तित्व एव कवित्व, पृ० १२७

उत्साह को बढाना कवि का लक्ष्य रहा है। कवि का विश्वास है कि जिस प्रकार परशुराम ने प्राचीनकाल में अत्याचारी राजाओं का विनाश कर भारत में धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा की थी, उसी प्रकार देश के संकट काल में परशुराम पुन अवतार लेकर देश की रक्षा करें। दिनकर ने परशुराम को भारत का भाग्य-पुरुष तक कहा है। यथा—

'है एक हाथ में परशु एक में कुश है
आ रहा भारत का भाग्य पुरुष है।"

कवि ने बार बार इस कविता में दोहराया है कि धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा तपस्या, अहिंसा, शान्ति जैसे साधना से नहीं हो सकती। इसके लिए वीरतापूर्ण भाव चाहिए।

उर्वशी

प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य की रचना सन १९६१ ई० में हुई थी। इसके कथ्य-सूत्र वेद पुराण महाभारत और भागवत आदि में मिलते हैं। उर्वशी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वैदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमें वर्तमान युग जीवन की चेतना का महाघोष है। उर्वशी' मूलत नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धों का विवेचक काव्य है।[1] 'उर्वशी काव्य में जिस प्रेम का निरूपण किया गया है वह सात्विक है, आध्यात्मिक है शाश्वत है, सत्य है, वस्तुत वही प्रेम प्रेम है उससे पूर्व जो कुछ भी है वह प्रेम तक पहुंचने का सोपान मात्र है।'[2]

उर्वशी में कथानक में काम, आकर्षण एवं सौन्दर्य का मनोवैज्ञानिक रूपांकन मिलता है। ऐसा लगता है कि इस कृति में कवि लारेंस रसेल तथा फ्रायड के तर्कों से प्रभावित रहा है। उर्वशी में काम का आध्यात्मिक पक्ष है तो साथ ही नर नारी समागम का पक्ष भी। इस प्रकार उर्वशी में काम का आध्यात्मिक पक्ष भी है। प्रेम यद्यपि शारीरिक स्थिति से अतीन्द्रिय क्षितिजों की ओर अग्रसर होता है तथापि शारीरिक स्तर त्याज्य नहीं है उसकी स्वीकृति आरम्भिक सोपान के रूप में होना चाहिए। कामाध्यात्म का यही स्वरूप उर्वशी में मिलता है।[3] दिनकरजी ने इस प्रबन्ध काव्य में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि काम पूरी तरह त्याज्य नहीं है। उर्वशी में प्रेम मनोविज्ञान तथा दर्शन का अद्भुत वाङ्मय सामञ्जस्य है। डा० नगेन्द्र ने इस काव्य कृति के विषय में कहा है—'भाव कल्पना और विचार से परिपुष्ट उर्वशी की कविता में भावों को आन्दोलित करने प्रबुद्ध कल्पना के सामने मूर्त अमूर्त के रमणीय चित्र अंकित करने और विचारों को उद्बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता है।'

१ डॉ० देवीप्रसाद गुप्त—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य पृ० २२७
२ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना पृ० १४२
३ वही, पृ० १११ (डॉ० चन्द्रभान रावत के लेख से उद्धृत)

गद्य लेखन

गद्यकार के रूप में दिनकरजी को निबंधकार, आलोचक, इतिहासकार और गद्य काव्य रचयिता की संज्ञा दी जा सकती है। दिनकरजी ने उपन्यास कहानी तथा नाट्य लेखन के क्षेत्र में कदम नहीं बढ़ाया। गद्य के क्षेत्र में दिनकरजी की प्रमुख कृतियां हैं— संस्कृति के चार अध्याय, अर्धनारीश्वर' मिट्टी की ओर' 'शुद्ध कविता की खोज' आदि।

संस्कृति के चार अध्याय

इस पुस्तक में दिनकरजी ने राष्ट्रीय संस्कृति का विवेचन किया है। इतिहास का अध्ययन कर उसका सारांश यहां प्रस्तुत किया गया है। दिनकरजी इस पुस्तक के माध्यम से हमारे सामने ऋषि के रूप में युग विवेचक के रूप में युग निर्माता के रूप में आते हैं। इसकी भूमिका स्वर्गीय प० जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है। इसका महत्व इसलिए ज्यादा बढ़ गया कि— इसमें इतिहास और संस्कृति के किसी भी जिज्ञासु छात्र के लिए वह सम्पूर्ण सामग्री मिल जाती है जिससे कवि की जीवन दृष्टि और उसकी सामाजिक चेतना का पूरा पूरा आभास मिल सकता है और उसका सम्पूर्ण काव्य आसानी से समझ में आ सकता है।[1] इसके अतिरिक्त सन १९५३ में इस ग्रंथ पर दिनकरजी को साहित्य अकादमी राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला था।

अर्धनारीश्वर

इस कृति की रचना दिनकरजी ने एक निबंधकार के रूप में की है। इसमें काव्य, समाज और राष्ट्र आदि के तत्व समाविष्ट है। इस रचना में नरत्व और नारीत्व, कभी हाथ में डमरू तो कभी वीणा, कहीं वीरता तो कहीं शृंगार का समन्वय हुआ है। यथा—

एक हाथ में डमरू एक में वीणा मधुर उदार
एक नयन में गरल एक में संजीवन की धार।

प्रस्तुत रचना के संदर्भ में दिनकरजी स्वयं लिखते हैं कि— इस संग्रह में ऐसे ही निबन्ध हैं जो मन बहलाव में लिखे जाने के कारण कविता की चौहद्दी के पास पड़ते हैं और कुछ ऐसे भी है जिनमें बौद्धिक चिंतन या विश्लेषण प्रधान है। इसलिए मैंने इस संग्रह का नाम अर्धनारीश्वर रखा है यद्यपि इसमें अनुपातत नरत्व अधिक और नारीत्व कम है।[2] इस कृति के लेखन में भी राष्ट्रीय भावना विद्यमान है।

मिट्टी की ओर

इसे आलोचकों ने प्रगतिवादी आलोचना की प्रतिनिधि रचना स्वीकारा है।

१ डॉ सत्यकाम वर्मा—जनकवि दिनकर, पृ० १७
२ अर्धनारीश्वर आमुख से उद्धृत

दिनकर के रचनाधर्मी व्यक्तित्व की विशेषताएँ

ओजस्विता से पूर्ण

गौरवर्ण, उन्नत भाल, तेजपूर्ण नेत्र और ऊँचे कद को धारण करने वाले दिनकरजी के व्यक्तित्व में शासनिक का तत्व चिंतन और राजपुरुष का ओज और तेज विद्यमान है। उनके बाह्य व्यक्तित्व में क्षत्रिय का तेज तथा परशुराम का गर्जन समाविष्ट है। विद्यार्थी जीवन से ही दिनकरजी ओजस्विता के धनी रहे हैं। डॉ० सावित्री सिन्हा लिखती हैं— लखनऊ के सलोने विद्यार्थियों के बीच उनका दृढ़ पौरुष और ओजपूर्ण व्यक्तित्व अलग ही दिखाई दे रहा था। उनका अह करीब-करीब दम्भ-सा प्रतीत हो रहा था। हम विद्यार्थियों की ओर वह ऐसे देख रहे थे जैसे कोई गंधर्व ऊँचे उड़ते विमान पर से नीचे के क्षुद्र महत्वहीन कीड़े मकोड़ों को देख रहा हो।'[1]

दिनकरजी की ओजस्विता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि एक छोटे से ग्रामीण परिवार में जन्मा बालक, बचपन से ही घोर विरोधों से जूझता हुआ अन्त में उन्नति के चरम बिन्दु पर जा पहुँचा। सन् १९५९ में उन्होंने राष्ट्रपति से पद्मभूषण की उपाधि प्राप्त की तथा १९५३ में साहित्य अकादमी द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुए। १९६२ में भागलपुर विश्वविद्यालय से डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि प्रदान की गयी तथा नागरी प्रचारिणी सभा से द्विवेदी पदक भी उन्हें दो बार मिला। जापान के पत्र 'ओरियेण्ट वेस्ट' में उनकी 'कलिंग विजय' नामक कविता का अनुवाद छपा। यूनाइटेड एशिया में उनकी आठ कविताओं के अनुवाद हुए। १९६३ में विदेशी साहित्य ग्रन्थमाला' में उनकी कविताओं का रूसी अनुवाद हुआ। उनकी प्रतिभा निरन्तर ऊँचाइयों का स्पर्श करती गयी। अपने काव्य में अपने समय का सूर्य हूँ मैं' कहने वाले 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म 'रश्मिरथी' के कर्ण और आज के परशुराम को व्याख्यायित करने में दिनकरजी बेजोड़ जान पड़ते हैं। १९६२ में हिमालय की बर्फीली चट्टानों से चीन तोपें दाग रहा था, तब उन्हें परशुराम की याद आई। परशुराम की प्रतीक्षा ने सुप्त भारतीयों को चेताया। इस प्रकार उनका सृजन निरंतर ओजस्वी बना रहा।

उदारता

उनके समकालीन समाज में चारों ओर अंधकार व्याप्त था। समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए व्योम से कवि दिनकर साकार होकर आये। आर्थिक शोषण से समाज को बचाने का उपाय उनकी दृष्टि में उदार भावना थी।

और सत्य ही कर्ण दान हित संचय करता था।
अर्पित कर बहु विभव निःस्व दीनों का घर भरता था।'[2]

1 युगचारण दिनकर पृ० २३
1 रश्मिरथी पृ० ६९

उदारता के सस्कार उन्होने पूजीपतियो म भर कर न केवल दान की प्रवत्ति उनमे डाली वरन आपातकालीन स्थिति म भी त्याग का आदश प्रस्तुत किया। त्याग की भावना उपजा कर कवि न देश और समाज का दरिद्रता की भीषण ज्वाला से बचाया।

युगधमचेता

जब भारत विदेशी शासन की जजीरो म जकडा हुआ था तो भारतीय जन जीवन सामाजिक विभीषिका, धार्मिक रूढिचक्र, आर्थिक उत्पीडन और शोषण के दल दल म फसा हुआ था। कृषक वग जमीदारो द्वारा शोषित था। तभी सूक्ष्मदर्शी कवि दिनकर न नजदीकी स दखा। छायावादी कवि अपनी कपोल कल्पित रचनाओ म निमग्न थे, तब दिनकरजी ने युग को चेतान के लिए कम वीच धम का सदेश दिया। दिनकरजी ने राष्ट्रीय जागरण की दुदुभी बजायी। इनका काव्य 'परशुराम की प्रतीक्षा युगो युगो तक हमारा पथ आलोकित करता रहेगा। श्री भगवतीचरण वर्मा न लिखा है— दिनकर हमारे युग के यदि एकमात्र नही तो सबस अधिक प्रतिनिधि कवि हैं।[1]

कल्पनाशीलता

दिनकरजी की काव्य सरचना का प्रस्थान बिंदु छायावादी काव्य चेतना ही थी। इसलिए उन्होंने छायावादी कवियो के समान कल्पना-लोक का भी भ्रमण किया था। 'रेणुका म व लौकिक मूल प्रतिपाद्य को छोडकर परियो के देश म पहुच जाते हैं। यथा—

> मेरे काव्य-कुसुम से जग का हरा भरा उद्यान बन,
> मेरी मृदु कविता भावुक परियों का कोमल गान बन।'[2]

दिनकरजी की कविताओ म छायावादी कल्पना के उपजीव्यो यथा ज्योत्स्ना, नभक्षत्र तितली विहगी मलयानिल निझरिणी, स्वण विधान आदि का भी वणन मिलता है। अभा-सन्ध्या याचना म रहस्य-तत्व की व्याख्या भी हुई है।

राष्ट्रीयता

दिनकरजी की राष्ट्रीयता के तीन रूप हैं। प्रथम तो अतीत गौरव-गान द्वितीय, वतमान की कारुणिक स्थिति और ततीय उसके निदान के लिए आतकवाद का सहारा।[3] दिनकर अत्यधिक उग्र विचारो के राष्ट्रकवि हैं।

हिन्दी के 'राष्ट्रीय साहित्य पर पश्चिमी राष्ट्रो का प्रभाव पडा है। राष्ट्रीयता

१ आज के लोकप्रिय कवि रामधारीसिंह दिनकर पृ० १५
२ रेणुका पृ० ११६
३ प्रो० कामेश्वर शर्मा—दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि, पृ० १६

जनता को संगठित बनाने की भावना, गुलामी से स्वतन्त्रता की ओर ले जाने की भावना तथा मुक्ति संग्राम में मर मिटने का आह्वान करती है। दिनकरजी भारतीय स्वतन्त्रता के समर्थ कवि हैं। वे स्वयं कहते हैं कि— 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।'[1] दिनकरजी जन जागरण चाहते थे इसी कारण वह विद्रोही और क्रान्तिकारी राष्ट्रीय कवि थे। स्वभाव से ही भावुक थे कल्पनाशील थे परन्तु वातावरण तथा संस्कार ने राष्ट्रीयता के बीज बो दिए और भावुकता का स्थान राष्ट्रीयता ने ले लिया। "राष्ट्रीयता उनकी आत्मा का प्रधान स्वर बन गया।"[2] इस राष्ट्रीयता ने ही दिनकरजी को क्रान्तिकारी बना दिया। 'दिनकर की राष्ट्रीयता बहुत गतिशील संश्लिष्ट और उदार है—उसमें तत्कालीनता, परम्परा राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, मानवता, भावनाशीलता, वैचारिकता का अद्भुत समन्वय है।'[3]

राष्ट्रभाषा प्रेम

मानव स्वभाव से जुड़ा यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि वह जिस वस्तु से प्यार करता है वह उसमें अच्छाई ही देखता है। दिनकरजी के साथ भी यह बात घटित होती है। वे राष्ट्रचेता और राष्ट्रप्रेमी हैं। जितने वे राष्ट्रप्रेमी हैं उसी के अनुपात में राष्ट्रभाषा प्रेमी भी। अपने विद्यार्थी जीवन की घटनाओं से ही दिनकरजी हिन्दी प्रेमी हो गये थे। उन्होंने आजीवन राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए प्राणपण से संघर्ष किया। राष्ट्रभाषा के साहित्य की समृद्धि के साथ साथ उन्होंने संवैधानिक स्तर पर भी उसके स्वरूप का संरक्षण किया।

क्रान्तिमत्ता

क्रान्तिकारी साहित्यकार समकालीन वातावरण एवं व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं होता वह उसका नाश कर नव निर्माण करना चाहता है। क्रान्ति तथा विद्रोह का विस्फोटक स्वर हमें दिनकर के सम्पूर्ण कृतित्व में मिलता है। प्रगतिवादी काव्य सर्जना से ही वे छायावादी भावुकता एवं कल्पना को छोड़कर यथार्थवादी बन गए। यथा—

' रह रह पंखहीन खग सा मैं गिर पड़ता भू की हलचल में
झटिका एक बहा ले जाती स्वप्न राज्य आँसू के जल में।'[4]

इस प्रकार कवि कल्पना के आँसुओं का जल में डूबा कर दलित पीड़ित जनता के नेतृत्व का दायित्व ग्रहण करता है। यहीं से दिनकरजी ने देश में व्याप्त विषमता क्षुधा, पीड़ा शोषण अन्धविश्वास, अन्याय आदि के विरुद्ध आवाज उठाई। दिनकरजी की क्रान्ति

१ चक्रवाल—भूमिका पृ० ३३
२ लक्ष्मीनारायण सुधांशु—दिनकर पृ० ८६
३ डा रामदरश मिश्र—हिन्दी कविता तीन दशक पृ० ६६
४ हुंकार, पृ० २१

भावना राजनीतिक, आथिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी जीवन क्षेत्रा म दृष्टिगत होती है।

निष्कष

दिनकर की सक्षिप्त जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व के पर्यालोचन से हम इस निष्कष पर पहुचत हैं कि वह दुद्धष चतना के महान रचनाकार थे। उन्होंने आजीवन सघपरत रहकर का य साधना की। उनके जीवन म यद्यपि जनक उतार चढाव आये तथा ऐसे अवसर भी आये जबकि पारिवारिक जीवन की समस्याए चट्टान बन कर खडी हो गयी फिर भी वे निर्बाध गति स का य सरचना करत रहे। उनकी प्रत्येक रचना युगधम की परिचायक है। दिनकर की का य चेतना के विकास का अध्ययन करन स यह तथ्य और भी अधिक पुष्ट हो जाता है कि व युग चेता कृतिकार तथा जनप्रिय कवि थे।

अध्याय २

दिनकर की काव्य-चेतना का विकास

दिनकर की काव्य चेतना का विकास चरण

चौदह वर्ष की छोटी आयु में ही भावुक कवि दिनकर का काव्य जगत में पदार्पण हो चुका था। समय के साथ साथ कवि ने अपने काव्य विधान के भी काफी रूप बदले। प्रारम्भिक रचनाएं केवल तालियों की गड़गड़ाहट के लिए ही लिखी गयी थीं।'[1] दिनकरजी का प्रादुर्भाव साहित्य जगत में तब हुआ जब छायावाद का बाहुल्य था। विषम परिस्थितियों के रहते हुए भी कवि दिनकर के हृदय में किसी कोमल तन्तु और सुकुमार भावना ने ही उन्हें कवि बना दिया था। अन्यथा वह राजनीतिक क्षेत्र में कूद कर दुर्द्धर्ष आतंकवादी बन जाते। ठीक इसके विपरीत सचाई यह है कि यदि युग की विभीषिका काफी प्रबल होती तो वह निश्चय ही सौन्दर्य के भावुक और प्रेम के गायक होते।"[2] 'दिनकर की काव्य चेतना अभाव से भाव, निषेध से स्वीकृति निवृत्ति दिवास्वप्न से चिन्तन और कल्पना से कर्म की ओर अग्रसर हुई है।[3] भावुक कवि ने प्रारम्भ में छायावादी काव्य प्रवृत्ति को सराहा था परन्तु पीड़ित जनता के दुःख दर्द देखकर कवि के रचना जगत में परिवर्तन आ गया। 'जब दुनिया में चारों ओर आग लग रही हो मनुष्य हिस्टीरिया के दौरे में फंसा कुत्तों की तरह आपस में लड़ रहे हों तथा पराधीन जातियां जुए उतारने के लिए बड़े बड़े आन्दोलन चला रही हों फिर कवि कैसे चुप रहता।[4] दिनकर ने स्वयं कहा है—'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं पनपी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।'[5]

आरम्भ में दिनकरजी के सामने काव्य रचना के अनेक स्तर थे। एक तरफ छायावाद की कल्पना, तो दूसरी तरफ पीड़ित समाज। बिहार के विद्रोही राष्ट्रीय चेतना के अग्निमय वातावरण में उनके कवि रूप का निर्माण हुआ, माखनलाल

१ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना पृ० २६
२ प्रोफेसर कपिल—दिनकर और उनकी काव्य कृतियां, पृ० ६३
३ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना (डा० देवीप्रसाद गुप्त के लेख से उद्धृत) पृ० ५४
४ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, पृ० २६
५ चक्रवाल, भूमिका से उद्धृत

चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी और मथिलीशरण गुप्त की रचनाओ द्वारा उन्हें राष्ट्रीय कविता के सस्कार प्राप्त हुए छायावाद स युवा व्यक्तित्व प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। यही कारण है कि रेणुका में हमें उनकी काव्य चेतना के अनेक सूत्र मिलते हैं।[1] जैसे कही छायावादी प्रवत्ति के अनुरूप—रग बिरगे चीर पहनकर हरे भरे खेतो का वणन है[2] तो कही रेणुका मे क्रान्ति के बीज दिखाई देते हैं—

अनाचार की तीव्र आँच म अपमानित अकुलाते हैं
जागो बोधिसत्व। भारत के हरिजन तुम्हे बुलाते हैं।'[3]

रेणुका' म नारी प्रेम और सौन्दय दिखाई देता है—

खोल दृग मधु नीद तज, तद्राल स, रूपसि विजन की
साज नव शृगार मधु घट सँग लेकर सुधि भुवन की।'[4]

'रेणुका मे ही वग सघप का भी चित्रावन हुआ है—

' जाने किस्मत म लिखा हाय
विधिने क्या दुख का उपाख्यान।'[5]

इसी काव्य मे नवयुग की चेतना भी मिलती है—

है तड़प परा पर स्वदेश।[6]

'रेणुका' म निराशा निर्वेद और पलायन के स्वर भी मिलते है—

महाप्रलय की ओर सभी को इस मरु मे चलते देखा
किससे लिपट जुड़ता ? सबका ज्वाला में जलते देखा।
अन्तिम बार चिता दीपक में जीवन को बलते देखा
चलते समय सिकन्दर से विजयी को कर मलते देखा।'[7]

इस प्रकार दिनकरजी की काव्य सरचना का विश्लेपण किया जाय तो मुख्यत पाँच चेतना-स्तर स्पष्टत परिलक्षित होते हैं—

१ राष्ट्रीय चेतनापरक
२ यथार्थवादी काव्य चेतनापरक
३ निवृत्तिमूलक वयक्तिक चेतनापरक
४ कल्पनाप्रधान सौन्दय चतनापरक
५ नारी भावनामूलक

दिनकरजी का काव्य चेतना के विकास के चार चरण हैं—

प्रथम चरण—रामाटिक भावबोध की कविताएँ।

१ युगचारण दिनकर पृ० ६८
२ रेणुका पृ० ३७
३ वही पृ १८
४ वही पृ ३६
५ वही पृ १६
६ वही पृ ५
७ वही, पृ० ८८

द्वितीय चरण—राष्ट्रीय भावना एवं प्रगतिशील चेतना की काव्य-सरचना।
तृतीय चरण—आध्यात्मिक भावबोध और मनोवैज्ञानिक चेतना की सरचना।
चतुर्थ चरण—नयी कविता की रचना शैली का काव्य।

रोमाटिक भावबोध की कविताएँ

रोमाटिसिज्म में अतीत के सम्मोहन का भाव निहित रहता है। वर्तमान परिस्थितियो का असतोष दुर्बल और अधिक सवेदनशील रोमाटिक कवि को अतीतोन्मुख बना देता है। रोमाटिसिज्म का जन्म उग्रवादी वातावरण में होता है। इस वातावरण की परिस्थितियों में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को सर्वोपरि स्वीकृति मिलती है। रोमाटिसिज्म में भावो तथा अनुभूतियो का तरल आवेश रहता है।

दिनकर की प्रारम्भिक रचनाएँ रोमाटिक भावबोध से सम्पृक्त थी। यदि रोमाटिक काव्य के विषय में यह मान्यता स्वीकार कर ली जाये कि वह सभावनाओ को देखकर नहा चलता, उसम वाछनीय अवाछनीय, सभावना-असभावना का प्रश्न नही उठता तो यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय प्रतिपाद्य की ओर कभी दिनकर की प्रारम्भिक दृष्टि रोमाटिक कवि की ही रही है।"[1] रेणुका' की 'ताडव' नामक कविता में शिवसम क्रान्ति का रोमाटिक वर्णन हुआ है। प्रलय के बादलो की गडगडाहट, अग्नि-वर्षा की ज्वाला पर्वतो की गडगडाहट आदि से सबधित वर्णन इस तथ्य के द्योतक है—

> "लगे आग इस आडम्बर म
> वैभव के उच्चाभिमान में,
> अहकार के उच्च शिखर में,
> स्वामिन अधड आग बुला दो
> जले पाप जग का क्षण भर में।'[2]

'हिमालय' नामक कविता में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है—

> कह दें शकर स आज करें
> वे प्रलय नृत्य फिर एक बार।
> सारे भारत मे गूज उठे
> हर हर बम का फिर महोच्चार।"

कस्मै देवाय' नामक कविता म भी आग बरसाने का आह्वान कवि ने किया है—

> "नाति धाति कविते ! जागें उठ
> आडम्बर म आग लगा दें

१ युगचारण दिनकर पृ० ७०
२ रेणुका (तृतीय सस्करण) पृ ३

पतन, पाप पाखण्ड जलें
जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दें।"[१]

अतः 'रेणुका' की कविताएँ दिनकर की भावनाओं और विचारों की तरुणावस्था का प्रदर्शन हैं।'[२]

'कुरुक्षेत्र' में अहिंसा का खण्डन करते हुए स्फूर्ति एवं चेतना में रोमाण्टिक भाव आ गया है। "अर्जुन के समान तेजस्वी गांधी को जब कवि अहिंसा की बात करते देखता है तो वह कृष्ण बन जाता है। अपनी सबल लेखनी में सशक्त अहिंसा के दुवह चित्र अपने काव्य में बार-बार खींचता है।'[३] दिनकर के काव्य में क्रांति की भावना स्वतंत्रता की सम्पूरक और सम्प्रेरक है। एक समीक्षक के शब्दों में— दिनकरजी के काव्य में स्वतन्त्रता और जन आन्दोलन की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। आपने अपने काव्य के ओजपूर्ण स्वर से राष्ट्र के प्राणों को नवीन चेतना प्रदान की है। आपकी रचनाओं में हृदय को प्रभावित और उत्साहित करने की पूर्ण शक्ति विद्यमान है।'[४] यह भावबोध दिनकर की सामधेनी, कुरुक्षेत्र, रसवंती, हुंकार, रेणुका, कलिंग विजय, रश्मिरथी, उर्वशी और परशुराम की प्रतीक्षा आदि रचनाओं में सर्वत्र दिखाई देता है।

'सामधेनी' में दिनकर की हृदयस्पर्शी कविताएं संग्रहीत हैं। इसी संग्रह की एक कविता में पतझड और प्रलय का सशक्त अंकन हुआ है। आग की भीख नामक कविता में कवि कहता है कि—

'प्यार स्वदेश के हित अंगार मांगता हूं
चढती जवानियों का श्रृंगार मांगता हूं
उन्माद बेकली का उत्थान मांगता हूं
विस्फोट मांगता हूं तूफान मांगता हूं।[५]

बापू' अरुणोदय में इसी प्रकार के भाव निहित हैं। धूप और धुआं, दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम, 'कोयला और कवित्व', सीपी और शंख, आत्मा की आँखें में भी रोमाण्टिक भावबोध ही दृष्टिगत होता है। वस्तुतः देखा जाय तो— दिनकर के ओजमय प्रगति के गीतों ने हृदय के रक्त में उष्णता ला दी।[६] उन्होंने देखा कि आडम्बरी कोलाहल में ग्रामीण सरलता तथा पवित्रता नष्ट हो रही है। पश्चिमी सभ्यता भारतीय सभ्यता को दबोच रही है। 'कविता की पुकार' में कवि ने इसी ओर ध्यान आकर्षित किया है—

१ रेणुका (तृतीय संस्करण) पृ० ३१
२ सुनीति—दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना पृ० ८८
३ वही पृ० ७
४ डा० कवर चन्द्रप्रकाशसिंह—काव्य सौरभ पृ० ११०
५ सामधेनी से उद्धृत
६ युग कवि दिनकर पृ० ७४

"नालन्दा, वैशाली में तुम रुला चुके सौ बार,
धूसर भुवन स्वर्ग माना में कर पाई न विहार।
आज यह राज वाटिका छोड,
चलो कवि, वनफूलों की ओर।
कितने दीप बुझे झाड़ी, झुरमुट में ज्योति पसार,
चले शून्य में सुरभि छोड़कर कितने कुसुम-कुमार।
कब्र पर मैं कवि रोऊँगी।
जुगनू आरती सँजाऊँगी।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कितनी मार्मिकता है। 'फूलों की कब्र पर कविता का क्रन्दन कितना हृदयविदारक है? प्रेम और करुणा का योग 'राजा रानी' शीर्षक रचना में भी अभिव्यंजित हुआ है। ऋतुराज वसन्त और ऋतुरानी वर्षा के जीवन के मधुर और करुण पक्ष पर भी कवि ने विचार किया है—

'राजा वसन्त वर्षा ऋतुओं की रानी
लेकिन दोनों की कितनी भिन्न कहानी।
राजा के मुख में हँसी, कंठ में माल,
रानी का अन्तर विकल, दृगों में पानी।

नयी दिल्ली' का रूपक 'मेथी की रानी' में कितनी मार्मिकता है। न जाने कितने गावों के स्नेहदीप बुझाने पर नयी दिल्ली में बिजली की चमकीली सजावट आयी—

"हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिन्न नग्न का अर्धवसन है
मजदूरों के कौर छिने हैं जिन पर उनका लगा दमन है।
× × ×
आहें उठी दीन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारें,
अरी! गरीबों के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें।'

'हाहाकार' शीर्षक कविता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि निम्नांकित स्थल को सुनकर भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद्जी भी रो पड़े थे—

"जेठ हो कि पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है
छूटे बैल का संग कभी, जीवन में ऐसा याम नहीं है
मुख में जीभ, शक्ति भुज में जीवन में सुख का नाम नहीं है
वसन कहाँ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है।'

इस प्रकार काव्य चेतना विकास के प्रथम दौर में रची गयी कविताओं में दिनकरजी रोमानी भावबोध से दीन दुखियों तथा शापितों पीड़ितों के प्रति करुणा भिमुख होते हुए दिखायी देते हैं।

[1] रेणुका पृ० २२

राष्ट्रीय भावना एव प्रगतिशील चेतना की काव्य सरचना

"राष्ट्रीयता का अथ किसी देश की भौगोलिक सीमा के भीतर विकसित जन समूह की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक सास्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के समन्वित स्वरूप से है। राष्ट्रीयता एक एसी भावना ह जो देश की जनता को सगठित रखती है गुलामी के दिना में स्वतन्त्रता की चेतना फूकती है मुक्ति सग्राम म मर मिटने का आह्वान करती है और कवियो तथा रचनाकारो को राष्ट्र जाति और धम की रक्षा के लिए आन्दोलन जगाने और राष्ट्र पर समपण की भावना भरन वाली रचनाएँ लिखने का प्रोत्साहन देती है।[१] दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता कूट कूटकर भरी है। दिनकर के कवि का हिन्दी साहित्य में प्रवश तब हुआ जब भारत परतन्त्रता की बेडियो में जकडा हुआ कराह रहा था। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ स ही भारत की जनता में राष्ट्रीय भावना पूण रूप स जागत हो गयी थी। दिनकरजी के चिन्तन पर रूस की लाल क्रान्ति का प्रभाव अत्यधिक पडा और वे जनता को साम्राज्यवाद के विरोध में खडे होने का आह्वान करने लगे। भारतवासी अनेक युगो से परतन्त्र है और युगो से उनके रक्त का शोषण चल रहा है। भारतवासी अन्याय तथा अपमान का ढोते हुए चल रहे हैं। वस साम्राज्यवादियो के विरुद्ध क्रान्ति करके प्रतिशोध लेन के लिए जनता का आह्वान किया है।[२] कवि दिनकर भारत भू के कण कण में बिखरे हुए अतीत के गौरव को श्रद्धदृष्टि स देख रहा था। रेणुका में इसी प्रेरणा को लेकर कवि मगल आह्वान करता है—

> 'दो आदेश फूक दू श्रृगी उठे प्रभाती राग महान्
> तीनो काल ध्वनित हो स्वर म जागे सुप्त भुवन के प्राण।[३]

दिनकरजी स्वतन्त्रता के समथक तथा जनजागरण क पोषक कवि हैं। इसीलिए तो वे कहते हैं कि—

> प्राची क प्रागण बीच देख जल रहा स्वण युग अग्नि ज्वाल,
> तू सिहनाद कर जाग यति मेरे नगपति मेरे विशाल।'[४]

दिनकरजी इतिहास का गौरव जनता म भर देना चाहते थे तभी तो वे कहते हैं कि—

> अकित है इतिहास पत्थरो पर जिनके अभिमानो का,
> चरण चरण पर चिह्न यहाँ मिलता जिनके बलिदानो का।
> गुजित कर जिनके नाद म हवा आज भी बोल रही
> जिनके पदाघात से कम्पित धरा अभी तक डोल रही।"[५]

१ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना (डा सत्यनारायण त्रिपाठी के लेख से उद्धृत) पृ ४१
२ हुकार—दिगम्बरी पृ २०
३ रेणुका—मगल आह्वान
४ रेणुका पृ ८
५ सामधेनी पृ ३५

'परशुराम की प्रतीक्षा' में भी यही स्वर मिलता है—

'झकझोरो, झकझोरो महान् सुप्तो को,
टेरो टेरो चाणक्य चन्द्रगुप्ता को,
विक्रमी तेज, असि की उद्दाम प्रभा को
राणा प्रताप, गोविन्द, शिवा सरजा को,
वराग्य वीर, बन्दा फकीर भाई को
टेरो टेरो माता लक्ष्मीबाई को।'[१]

'समकालीन राष्ट्रीय कविताओं से प्रभावित होने के साथ साथ दिनकर को तत्कालीन जन-जागति की भावनाओं से भी राष्ट्रीय विचारधारा और क्रान्तिपरक कविताएँ लिखने की प्रेरणा मिली।'[२]

'कुरुक्षेत्र' में कवि तूफान का वर्णन करते हैं। इस वर्णन में भावनाएं राष्ट्र को प्रेरणा देती है कि किस प्रकार झंझावाता से अशक्त विनष्ट हो जाते हैं किन्तु शक्तिशाली अभिमान से सीना ताने खड़े रहते हैं—

'ओ युधिष्ठिर से कहा तूफान है देखा कभी ?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ,
काल सा वन में द्रुमो को तोडता झकझोरता।'[३]

" 'रश्मिरथी' में सामाजिक जागरण के व सभी स्वर हैं जो आज किसी न किसी अश में उन सभी वादों से सन्निहित हैं जो जथ के सुविनियम पर नये युग को खड़ा करना चाहते हैं।"[४] दिनकर पथ के आदर्शों को देश के लिए घातक मानते हैं। तभी तो उनका का यनायक कर्ण कहता है कि—

मैं उनका आदर्श नहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे।
पूछेगा जग किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
मैं उनका आदर्श किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे।
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।'[५]

'समरांगण' में कवि मरते हुए सनिक के द्वारा राष्ट्रीय जनमानस को एक नई चेतना देता है—

'यह झंडा जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड रही है।
छिन न जाय इस भय से अब भी कस कर पकड रही है।
थामो इसे शपथ लो ! बलि का कोई क्रम न रुकेगा।
चाहे जो हो जाय मगर यह झंडा नहीं झुकेगा।

१ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ६
२ डा राजपाल शर्मा—युग चेता दिनकर और उनकी उवशी पृ० ११
३ कुरुक्षेत्र पृ १६
४ दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना पृ १२
५ रश्मिरथी पृ० ६७

इस झडे मे शान चमकती है मरन वाला की।
भीमकाय पवत स मुट्ठी भर लडने वालो की।[1]

राष्ट्रीय भावना स प्रेरित कवि श्रमिको कृषको एव कोटि कोटि मा-बहूओ की अधनग्नता एव विवशता स दु खित हो राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक आदि सभी क्षेत्रा म क्राति का आह्वान करता है। कवि पहले भावुक था परन्तु परिस्थितिया ने उसे क्रातिकारी बना दिया। वे स्वय स्वीकार करते हैं— राष्ट्रीयता मरे व्यक्तित्व के भीतर स नही जन्मी। उसने बाहर स आकर मुझ आक्रात किया है।[2] निश्चय ही दिनकरजी ने राष्ट्रीय जीवन म राष्ट्रीय चेतना का अभूतपूव सचार किया।

आध्यात्मिक भावबोध और मनोवैज्ञानिक चेतना की काव्य सरचना

दिनकर के काव्य म उवशी कुरुक्षेत्र और परशुराम की प्रतीक्षा म आध्यात्मिकता का बोध स्पष्ट रूप स दिखता ह। कवि ने समाजवाद की अनिवाय भौतिक आवश्यकता को भी आध्यात्मिक स्तर पर लाकर ही विचार किया है। आत्मा स उठने वाल विश्वास के बल पर कोइ भौतिक विचार अपना भौतिक रूप खोकर आध्यात्मिक महत्व का बन उठता ह। यहा वह केवल तक का विषय न रह कर *विश्वास और कत्तव्य का विषय बन जाता है।* युद्ध भी इस प्रकार एक भौतिक अनिवायता न रह कर महत्वपूण दायित्व का विषय बन जाता है।[3] दिनकर ने *'परशुराम की प्रतीक्षा म क्राति धम को वरेण्य माना है—*

तलवार पुण्य की सखी धम पालक है
असि छोड भीरु बन जहा धम सोता है
पातक प्रचण्डतम वही प्रकट होता है।"[4]

उवशी म आध्यात्मिकता मिलती है परन्तु वह *कामाध्यात्म* का का य है। कवि की दृष्टि म—

वह विनम्र आकाश जहा की निर्विकल्प सुषमा म
न तो पुरुष म पुरुष न तुम नारी केवल नारी हो
दोना हैं प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के।
देह बुद्धि स पर नही जो नर अथवा नारी है।[5]

कुरुक्षेत्र में कवि परम्परित भारतीय दशना की अपेक्षा कम दशन को विशेष महत्व देता है। यथा—

बुला रहा निष्काम कम वह
बुला रही है गीता

१ सामधेनी प० ६६ ६७
२ चक्रवाल भूमिका प ३३
३ डा० सत्यकाम वर्मा—जनकवि दिनकर प० ४३
४ परशुराम की प्रतीक्षा प ४
५ उवशी तृतीय अक (सस्करण १९६१) प० ६३

बुला रही है तुम्हें आत हो
महीं समर सभीता।'[1]

जहाँ तक मनोविज्ञान का प्रश्न है—'कवि की चेतना प्रारम्भ से ही द्वन्द्वात्मक रही है। व्यक्तिगत प्रेम और सामाजिक दायित्व में छायावादी काव्य को अपनाने या प्रगति की उपासना और प्रयोग की आकांक्षाएँ तथा नारी के मोहक रूप को अथवा पत्नी या माता रूप को स्वीकार करने में कवि को द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना करना पडा है। यही द्वन्द्व शौर्य शृंगार, राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता के रूप में उनके मानस में व्याप्त रहा जिसकी अभिव्यक्ति है इनका काव्य।'[2]

रेणुका में विभिन्न मनोभाव प्रदर्शित हुए हैं। जैसे बारदोली विजय नामक कविता में वीरता तथा शौर्य का भाव प्रधान है। वाणी, द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल आदि देश प्रेम से परिपूर्ण रचनाएं हैं। गीता वासिनी शृंगारिक कविता है। 'हिमालय ताण्डव' 'कविता की पुकार आदि प्रगतिवादी तथा 'राजारानी, विश्व छवि और जीवन संगीत' छायावादी भावबोध की रचनाएं हैं।

हुंकार' में वीर रस के साथ साथ शृंगार तथा करुण रस का भी समाहार हुआ है। 'विपथगा' और 'दिगम्बरी' क्रान्तिमत चेतना से परिपूर्ण हैं—

'मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात
किस रोज किधर से आऊंगी
मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध
अम्बर में आग लगाऊंगी।"[3]

सामधेनी' में मामाजिकों को मनोबल प्रदान किया गया है—

'जिस मिट्टी ने लहू पिया वह फल खिलायेगी ही
अम्बर पर घन बन छायेगा ही उच्छ्वास तुम्हारा।
और अधिक ले जाव, देवता इतना क्रूर नहीं है
थक कर बैठ गये क्या भाई मंजिल दूर नहीं है।"[4]

बापू' नामक कविता में कवि ने एकपक्षीय प्रेम का चित्रण किया है किन्तु यह प्रेम शृंगारिक नहीं अपितु मानव मानव के सौहार्द का प्रेम है—

'पर हाय! प्रणय के तार छोर
बस एक हमारे कर में है
क्या अन्य छोर भी इसी तरह
आबद्ध अपर अन्तर में हैं?"[5]

१ हुंकार पृ० १७५
२ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना पृ० ८
३ हुंकार से उद्धृत
४ सामधेनी से उद्धृत
५ बापू से उद्धृत

'द्व द्वगीत मे मानव सघष का सशक्त मनोवज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। एक समीक्षक के अनुसार— इनकी शृगारिक भावनाए और देश को स्वाधीन बनाने के प्रयत्नों के फलस्वरूप कवि मानव उद्वलित हो उठता है। छायावादी और रहस्यवादी भावनाओ के साथ प्रगतिवाद का स्वर भी अन्तद्वन्द्व उत्पन्न करता है। यही द्वन्द्व, 'द्वन्द्वगीत' म प्रकट हुआ है।'[1]

रसवन्ती म शृगार चेतना और नारी भावना की समन्वित अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

> कढी यमुना स कर तुम स्नान
> पुलिन पर खडी हुइ कुच खोल
> सिक्त कुन्तल स झरते देवि
> न्यि हमन सीकर अनमोल।[2]

कलिंग विजय' म युद्ध का निन्य घोषित किया है तो कुरुक्षेत्र में अनिवाय है। रश्मिरथी में पुरुषाथ की महिमा का बखान हुआ है—

> पुरुष क्या शृखला को तोड करके
> चल आगे नही जो जोर करके ?[3]

परशुराम की प्रतीक्षा में कवि ऐसी शक्ति की प्रतीक्षा कर रहा है जो देश को शक्तिशाली बना दे। यथा—

> यह वक्ष वज्र के लिए सुभो में सुभ हैं
> यह और नही कोई केवल हम तुम हैं।[4]

इस प्रकार मनोवज्ञानिक धरातल पर दिनकरजी के काव्य में सभी प्रकार के मनोभावों का समन्वय हुआ है।

दिनकर के काव्य की प्रवृत्तिमूलक चेतना

राग-चेतना

दिनकर के काव्य म प्रमुख रूप स पौरुष, ओज, क्रान्ति तथा सघष की बात कही गयी है। क्रान्तिमत चेतना क रचनाकार होते हुए भी वे राग तत्त्व को नही छोड पाये हैं। व स्वय स्वीकार करते हैं—' सस्कारो म मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गजन-तजन स दूर रहू और केवल ऐसी ही कविताए लिखू जिनम कोमलता और कल्पना का उभार

१ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य-साधना (डा० शान्तिगोपाल पुरोहित क लेख से उद्धत), पृ० ८
२ रसवन्ती पृ० २६
३ रश्मिरथी पृ० ६५
४ परशुराम की प्रतीक्षा से उद्धृत

हूं । यही कारण था कि जिन दिनों 'हुंकार' की कविताएं लिखी जा रही थी, उन्हीं दिनों मैं 'रसवन्ती' और 'द्वन्द्वगीत' की भी रचना कर रहा था ।[१] 'रसवन्ती' की कविताएं मुख्यतः रागात्मक चेतना की अभिव्यक्ति करती हैं, इसके लिए कवि कहते हैं कि—"सुयश तो मुझे हुंकार से मिला लेकिन आत्मा मेरी रसवन्ती में बसती है क्योंकि प्रेम वह मणि है जिसमें से प्रसारित होने वाली हर रंग की किरण अपना वशिष्ट्य बनाये रहती है ।"[२]

राग चेतना का विकास 'रेणुका' 'रसवन्ती' तथा 'उर्वशी' में क्रमशः हुआ है। दिनकर की दृष्टि में ऐन्द्रिय प्रेम साधना मात्र में है और प्राप्य है। इनके काव्य की यह विशेषता रही है कि पुरुष और नारी को प्रेम के धरातल पर समान गौरव प्रदान करते हैं। 'रेणुका' की राजा रानी, 'रसवन्ती' की पुरुष प्रिया जैसी कविताओं में स्त्री-पुरुष को परस्पर सापेक्ष रख कर काम तत्त्व का विश्लेपण किया गया है। सीपी और शंख में प्रेम भावना का निदर्शन है। वहां कामशास्त्रीय पद्धति से नारी को चित्रित किया गया है। यथा—

"चुम्बनों के वन में मैं ही तुम्हारे साथ हूं,
तुम मुझे पहने हुए हो अब भला क्या भीति ।"[३]

अधिकांश समीक्षक इस तथ्य को भी उजागर करते हैं कि—"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि कवि शृंगारप्रिय है और परिस्थितियों के कारण वह उच्चकोटि की राष्ट्रीयता प्रतिपादित कर रहा है। अतएव इनको शृंगारप्रियता को स्वाभाविक ही मानना पड़ेगा ।'[४]

राष्ट्रीय चेतना

दिनकर के राष्ट्रीय काव्य का जिस युग में गठन हुआ, वह भारतीय क्रान्ति का युग था। दिनकर के काव्य में सर्वत्र राष्ट्रीय भावना मिलती है। 'राष्ट्रीय भावना में व्यक्तिगत हितों का प्रश्न नहीं उठता। सामाजिकता और सामुदायिकता इस भावना के कण-कण में समायी है बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि सामुदायिकता और सामाजिकता से ही राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व जब संकीर्णता की दीवारें तोड़कर सामुदायिकता में विकसित और विलीन हो जाता है तब राष्ट्रीय भावना का विकास होता है।'[५] सच तो यह है कि—'सभी प्रकार की राष्ट्रीय भावनाओं का मूलाधार अपने देश विदेश में मातृ भावना का प्रतिष्ठान ही है।'[६] राष्ट्रीय कविता का जन्म और देश में चाहे जिस परिस्थिति में हुआ हो, भारत-

१ चक्रवाल, भूमिका पृ० ३३
२ डा० प्रेमचन्द्र जैन—राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी काव्य कला, पृ० १७२
३ सीपी और शंख पृ० ४७
४ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना पृ० ५
५. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना पृ० ६
६ प्रो० शिवबालक राय—दिनकर 'प्रवेश' से उद्धृत

वप म ता वह पराधीनावस्था मे ही पनपी।[1] 'समकालीन राष्ट्रीय कविताओ स प्रभावित होने के माथ साथ दिनकर को तत्कालीन जन-जागति की भावनाओ स भी राष्ट्रीय विचारधारा और क्रान्तिपरक कविताए लिखने की प्रेरणा मिली।'[2] दिनकरजी की राष्ट्रीय चतना निम्नलिखित उद्धरण म स्पष्ट परिलक्षित होती है—

क द मूल नीवार भोगकर सुलभ इगुदी तरु जलाकर
जन समाज सतुष्ट रहे हिल मिल आपस म प्रेम बढाकर।[3]

प्रगतिशील चेतना

'प्रगतिवाद' हिदी साहित्य म निम्नलिखित नतिक सामाजिक राजनीतिक मायताए लेकर आया है—

(१) साहित्य और कला सवहारा (शोषित) वग का पक्ष ग्रहण करें। वे उनके जीवनोत्थान के साधन शास्त्र बनें।

(२) पतनोन्मुख पूजीवाद सस्कृति का शत्रु है इसलिए उस उसके समस्त परिवार साम्राज्यवाद और फासिवाद (Fascism) के साथ निशष किया जाय।

(३) व्यक्ति द्वारा व्यक्ति और वग द्वारा वग के जमानवीय शोषण को *मिटाने के लिए उनके वग सघष को वग विद्रोह को विकसित, उत्तेजित और प्रवर्तित किया जाय।*

(४) जन साहित्य और जन कला द्वारा जन सम्पक और जन सस्कृति का निमाण करके सामाजिक क्रान्ति की भूमिका प्रस्तुत हो।[4]

प्रगतिवाद क्या है?

प्रगतिवाद का सीधा सम्बध माक्सवाद स है। माक्स ने अपन क्रान्तिकारी विचारो द्वारा राजनीतिक आर्थिक धार्मिक और साहित्यिक जगत को काफी प्रभावित किया है। माक्स न पूजीवाद की तह में प्रवेश कर उसक दुष्परिणामो का अनुभव किया। धम सस्कृति इतिहास युद्ध आदि के मूल में माक्स न अथ को बठा पाया। शोषक शोषित शासक शासित धनी गरीब मालिक मजदूर बस इन दोनो वर्गों में ससार बटा हुआ है। व्यक्तिगत पूजी का विनाश कर वर्गविहीन समाज की स्थापना करना माक्सवाद का अन्तिम लक्ष्य है।[5] सन १९३६ म प्रगतिवाद धारा प्रथम बार हिन्दी साहित्य म एक क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया के रूप में आई।[6]

१ प्रो शिवबालक राय—दिनकर प्रवेश स उद्धृत पृ० ४३
२ राजपाल शर्मा—युगचेता दिनकर और उनकी उवशी पृ ११
३ रेणुका पृ ३२
४ प्रो सुधाशु—हिन्दी कविता का क्रान्तियुग पृ० ४४६
५ दिनकर पृ ४६
६ डा० दयाप्रसाद गुप्त—साहित्य सिद्धात और समालोचना पृ० १५६

दिनकर का काव्य प्रगतिशील काव्य है। इसमें सामान्य आदर्श की स्वर्ण आभा ही नहीं पर सुनिश्चित दिशा में प्रगति का संकेत भी मिलता है। नव निर्माण की आकांक्षा का एक पहलू परम्परा गलित का विनाश है। विनाशवाद भी दिनकर में कम नहीं। उन्होंने वर्गगत शोषण का चित्रण करते हुए इसे अंकित किया है। यथा—

"आह उठी दीन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारें
अरी गरीबी के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें।'[1]

सामाजिक जीवन की दरारी विषमता दिनकर के प्रगतिवादी चिंतन का ही परिणाम है। तभी तो वे कहते हैं कि—

'श्वानों को मिलते दूध वस्त्र भूखे बालक चिल्लाते हैं।
माँ की गोदी में ठिठुर ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं॥
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेल लगा पानी सा द्रव्य बहाते हैं।'[2]

दिनकरजी ने कामना की है कि समाज में विकास और प्रगति का अवसर सभी को प्राप्य हो। प्रतिरोधी का उन्मूलन भी अपेक्षित है। यथा—

वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो।
रस सोखता है जो यही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिरायें तोड़ो डालियाँ कतर दो।'[3]

उन्होंने मनु पुत्रों का आह्वान करते हुए जन धन द्रोहियों को ललकारा है। कवि ने निःशंक होकर शोषण का प्रतिरोध किया है—

"जनता की छाती भिदें और तुम नींद करो,
अपने भर तो यह जुलुम नहीं होने दूंगा।
तुम बुरा कहो या भला मुझे परवाह नहीं
पर दोपहरी में तुम्हें नहीं सोने दूंगा।'[4]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दिनकर की काव्यकृतियों में यथाप्रसंग स्थल स्थल पर प्रगतिशील चेतना का उन्मेष परिलक्षित होता है। वे समग्र रचनात्मक शक्ति का अवलम्ब लेकर असमानता और जनशोषण का प्रतिरोध करने हेतु कृत संकल्प दिखाई देते हैं।

आध्यात्मिक चेतना

दिनकरजी के काव्यों—'उर्वशी', कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में

१ रेणुका—जूठे पत्ते से उद्धृत
२ हुंकार पृ० ७१
३ कुरुक्षेत्र पृ० ८६
४ नीलकुसुम पृ० ६०

आध्यात्मिक बोध का युगसापेक्ष स्वरूप स्पष्ट रूप स दृष्टिगत होता है। कवि ने समाजवाद की अनिवाय भौतिक आवश्यकता को भी आध्यात्मिक स्तर पर लाकर ही विचार किया है। आत्मा स उठन वाले विश्वास क बल पर कोई भी भौतिक विचार, अपना भौतिक रूप खोकर आध्यात्मिक महत्व का बन उठता है। यहा कवल तक का विषय बन जाता है युद्ध भी इस प्रकार एक भौतिक अनिवायता न रहकर महत्वपूर्ण दायित्व का विषय बन जाता है।[1] इस दृष्टि से उनकी विभिन्न कायकृतियो के कतिपय स्थल उद्धरणीय है। यथा —

कम भूमि है निखिल महीतल जब तक नर की काया
जब तक है जावन के कण कण म कत्तय समाया।
कम रहेगा साथ भाग वह जहा कहा जायेगा।[2]

× × ×

धमराज स यास खोजना कायरता है मन की
है सच्चा मनुजत्व ग्रथिया सुलझाना जीवन की।"[3]

× × ×

यह निवृत्ति है ग्लानि पलायन का यह कुत्सित श्रम हो
नि श्रयस यह श्रमित पराजित विजित बुद्धि का भ्रम है।[4]

× × ×

ईश्वरीय जगभिन्न नहा है इस गोचर धरती से
इसी अपावन मे अदश्य वह पावन सना हुआ है।[5]

× × ×

"प्रकृति नहीं माया माया है नाम भ्रमित उस धी का
बीचो-बीच सप सी जिसकी जिह्वा फटी हुई है
एक जीभ से जो कहती कुछ सुख अजित करने का
और दूसरी स वाकी का वणन सिखलाती है।
मन की कृति यह द्वत प्रकृति मे सचमुच द्वत नही है
जब तक प्रकृति विभक्त पडी है श्वेत श्याम खण्डा मे
विश्व तभी तक माया का मिथ्या प्रवाह जगाता है।
इसलिए—सघर्षों म निरत विरत पर उनके परिणामो से,
सदा मानत हुए यहा जो कुछ है मात्र क्रिया है।[6]

१ जनकवि दिनकर पृ० ४३
२ कुरुक्षेत्र पृ० ४
३ वही पृ ५
४ वही पृ १२४
५ उवशी पृ० ७५
६ वही, पृ० ७६ ७७

मनोवैज्ञानिक चेतना

जहा तक मनोविज्ञान के का यात्मक समाहार का प्रश्न है— 'कवि की चेतना प्रारम्भ से ही द्वन्द्वात्मक रही है—व्यक्तिगत प्रेम और सामाजिक दायित्व म छायावादी काव्य का अपनाने या प्रगति की उपासना और प्रयोग की आकाक्षायें तथा नारी के मोहक रूप को अथवा पत्नी या माता रूप को स्वीकार करन म, कवि को द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना करना पडा है। यही द्वन्द्व, शौर्य शृगार, राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता के रूप में उनके मानस में व्याप्त रहा जिसकी अभिव्यक्ति है उनका काव्य।[1] दिनकर के काव्य में मनस्तत्व का निरूपण विविध स्तरो पर हुआ है। अनेक सूक्ष्म एव गभीर मनोवैज्ञानिक तथ्यो का विवेचन दिनकर के काव्य की विशेषता है। व स्वय कहते हैं कि—'प्ररणा का धरातल सस्कार का और रचना का धरातल परिश्रम और अभ्यास का धरातल होना है।'[2] मानवीय वत्तियो के निरूपण की दृष्टि स 'उवशी' प्रबन्ध काव्य द्रष्टव्य है।

काम भावना

'वक्षस्थल पर इसी भाति मेरा कपोल रहने दो
कसे रहो बस इसी भाति उर पीडक आलिगन से
और जलाते रहो, अधर पुट को कठोर चुम्बन स।"[3]

नारी सुलभ ईर्ष्या

जिसके कारण भ्रमा हमारे महाराज की मति को
छीन ले गयी अधम पापिनी मुझस मेरे पति को।
य प्रवचिकायें, जाने क्यो तरस नही खाती हैं
निज विनोद के हित कुल-वामाओं को तडपाती है।'[4]

सामाजिकता की प्रवृत्ति

"भूल गये क्यो दयित हाय, उस नीरव निभृतनिलय म,
बैठी है कोई अखण्ड वन्हिमयी समरा धन म
अश्रुमुखी मागती एक ही भीख विलोक मरण स
क्षण भर भी मत अकल्याण हो प्रभो! कभी स्वामी का
जो भी हो आपदा, मुझे दो, मैं प्रसन्न मह लूगी।"[5]

१ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना (डा० शान्तिगोपाल पुरोहित के लेख स उद्धृत) पृ० ८
२ चक्रवाल भूमिका पृ० ४४
३ उर्वशी पृ० ५३
४ वही पृ० ३२
५ वही, पृ० १५०

आत्मनिष्ठा की प्रवृत्ति

'लाओ मेरा धनुष सजाओ गगन नयी स्पन्दन की,
सदा नही, बस शत्रु स्वर्ग पर मुझे आज जाना है,
और दिखाना है दाहकता कितनी अधिक प्रबल है
भरत शाप की या पुरुरवा के प्रचण्ड बाणो की।'[1]

नवान्वेषण की प्रवृत्ति

मृषा बन्ध विक्रम विलास का मृषा मोह माया का,
इन दहिक सिद्धियो कीर्तियो के कंचनावरण म,
भीतर ही भीतर विपरण म कितना रिक्त रहा हूँ
अन्तरतम वे रुन्न अभावा की अ यक्त गिरा का
कितनी बार श्रवण करके भी मैंन नही सुना है।
पर अब और नहीं अवहेला अधिक नहीं इस स्वर की
ठहरो आवाहन अनन्त के ! मूक निनाद प्राणो के !
पथ खोलकर अभी तुम्हारे साथ हुआ जाता हूँ।'[2]

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी सहज प्रतिभा सूक्ष्म चेतना एव मनोविज्ञान क बल पर मानवीय प्रवृत्तियो का निरूपण अत्यन्त कुशलता के साथ किया है। इसलिए कवि की उवशी मनोवैज्ञानिक दृष्टि स एक प्रसिद्ध कृति कही जा सकती है।[3] दिनकर की काव्य सरचना म मनोवैज्ञानिक वत्तियो का निरूपण कलात्मक चारुत्व से सवत्र ही परिपूर्ण है उसम छिछली कामुकता और निरकुश वासनात्मकता का अभाव है।

क्रान्तिमन्त चेतना

क्रान्तिकारी साहित्यकार समकालीन वातावरण एव व्यवस्था स सन्तुष्ट नहीं होता तब उसका नाश कर नव निर्माण करना चाहता है। यही क्रान्ति तथा विद्रोह का रूप हम दिनकर के सम्पूर्ण साहित्य मे पाते हैं। दिनकर की क्रान्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म व्याप्त है। जब दिनकरजी न देश मे व्याप्त विषमता क्षुधा पीडा शोषण, अन्धविश्वास देखा तो अन्याय शोषण और हत्याकाण्ड के विरुद्ध आवाज उठायी। दिनकरजी की क्रान्ति भावना राजनीतिक सामाजिक धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रो म द्रष्ट य है। क्रान्तिमन्त चेतना क कतिपय काव्य स्थल उद्धृत हैं—

'हा भारत की लाल भवानी
जवा कुसुम के हारो वाली।

१ उवशी पृ० १४१
२ वही प १४७
३ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना (श्री अशोककुमार मित्र के लेख से उद्धृत) पृ १६१

शिवा, रक्त राहित-वसना,
कबरी में लाल किनारी वाली ?
कर में लिए त्रिशूल, कमण्डल,
दिव्य शोभिनी, सुर-सरि-स्नाता।
राजनीति की अचल स्वामिनी।
साम्य धर्म ध्वज धन की मत।"[1]

उपर्युक्त छन्द में कवि ने क्रान्ति की देवी मा भवानी का आह्वान किया है तो निम्नलिखित छन्दों में कविता को भी जागरण की सवाहिका माना है—

'उठ भूषण की भाव रंगिणी लेनिन के दिल की चिनगारी।
युग मर्दिता यौवन की ज्वाला जाग-जाग री क्रांति कुमारी।"[2]

अथवा

"क्रांति धात्रि कविते ! जाग उठ आडम्बर में आग लगा दे,
पतन, पाप पाखण्ड जलें, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।"[3]

कवि का विचार एवं भाव जगत दोनों परिवर्तन के लिए कृत सकल्प है। वह निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ते हुए जीवन को क्रान्ति बनाना चाहता है।

गीता से फिर चट्टान तोड़ता हूँ साथी,
झुरमुटें काट आगे की राह बनाता हूँ।
है जहा-जहा तम तोम सिमटकर छिपा हुआ,
चुन चुन कर कुजो में आग लगाता हूँ।"[4]

निष्कर्ष

दिनकर की काव्य चेतना के विकास के विविध चरणों का अनुशीलन करने से यह तथ्य उजागर होता है कि वे व्यापक भावबोध और युगधर्म से अनुप्रेरित रचनाकार थे। उन्होंने क्रान्तिमन्त चेतनापरक काव्य रचने के साथ साथ निवृत्तिमूलक वैयक्तिक चेतनापरक कल्पनाप्रधान सौन्दर्य चेतनापरक तथा रोमांटिक भावबोध की रचनाएं की। दिनकर की सुदीर्घ काव्य यात्रा में लगभग तीन दर्जन काव्यकृतियों का प्रणयन हुआ, ये सभी रचनाएँ कवि की उदात्त भावना तथा उच्चकोटि के चिंतन स्तर का परिचायक हैं। उनकी रचनाधर्मिता कितनी विविधोन्मुखी थी ? इसका प्रमाण कथ्य-सदर्भों की विविधता से मिलता है। पीड़ित और पददलित मानवता के पक्षधर के रूप में दिनकर का काव्य क्रान्तिमन्त चेतना से परिपूर्ण है।

१ सामधेनी पृ० ७०
२ रेणुका पृ० ३३
३ हुंकार पृ० २
४ नीलकुसुम पृ० ६९

अध्याय ३

क्रान्तिमत चेतना सैद्धान्तिक स्वरूप-विवेचन

'क्रांति' शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या

क्रांति शब्द का अर्थ प्रगति है। इसकी व्युत्पत्ति 'क्रम' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है— आगे बढ़ना। 'क्रान्ति' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कोशकारों के मत इस प्रकार हैं—

क्रान्ति— क्रमण, गति, जाना, लाँघना, सूर्य का भ्रमण मार्ग, स्थिति में उलट फेर, पूर्ण परिवर्तन, राज व्यवस्था का उलट दिया जाना, राजक्रांति।[1]

गति, चाल, बहुत भारी परिवर्तन या फेर फार जिससे किसी स्थिति का स्वरूप बदल कर और का और हो जाय। उलट फेर।[2]

क्रांति अंग्रेजी शब्द 'रिवोल्यूशन' (Revolution) का हिन्दी पर्याय है, जिसका अर्थ है आत्यंतिक परिवर्तन। अंग्रेजी में 'रिवाल्व' का अर्थ है परिभ्रमण, जो प्रकृति का अनिवार्य नियम है। हिन्दी कोशकारों की तरह अंग्रेजी के भी अनेक विद्वानों ने क्रांति शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। जैसे—

"A complete and forcible over throw of an established Government or political system"[3]

The action of turning over in discoure or talk'[4]

A turning over as in talk or in the mind, discussion pondering consideration (b) Recurrerce, Repetition (c) A turn or twist, a band (d) A cycle, an epoch "[5]

---

१ कालिकाप्रसाद राजवल्लभ सहाय मुकुन्दलाल श्रीवास्तव—बृहत् हिन्दी कोश पृ० ३१८
२ रामचन्द्र वर्मा—प्रामाणिक हिन्दी कोश पृ० २३७
3 The Unabridged Edition The Random House Dictionary of the English language p 1227
4 The Oxford English Dictionary Volume VII Poy Ray, p 617
5 Willi m Allan Neilson—Webster s New International Dictionary of the English Language, p 2134

"A complete or drastic change of any kind, as a revolution in modern physics [1]

(२) एक दशा से दूसरी दशा मे परिवतन, उलट फेर।

'चेतना' शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या

'होश म आना, बुद्धि विवेक स काम लेना, सावधान होना, सोचना, विचारना। [2]

'चेतना' अंग्रेजी शब्द 'कानशियसनेस (consciousness) का हिन्दी पर्याय है। अंग्रजी में चेतन' शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या इस प्रकार मिलती है—

'Conscience is a blushing, shame faced, sprit that multinies in man's bosom, it fills one full of obstacles' [3] Shakesheare

Conscierce never commands nor forbids any thing outhentically but there is some law of God which commands and forbits it first [4] South

Conscience is coward and those faults it has not strength enough to prevent it seldom has justice enough to occuse" [5] Gold smith

'क्राति की परिभाषाएँ

प्रोफेसर शिवबालक के अनुसार—"क्रातिवाद एक उमड़ती हुई बाढ है जो दुर्बलो का विनाश कर जीवन क्षेत्र में नई मिट्टी भर देती है। क्राति का आमूल परिवतन पर विश्वास है। क्रान्ति समाज की उन्नति के लिए अनिवाय सोपान है। क्रान्ति के लिए तीक्ष्ण बुद्धि तीव्र वग और प्रचण्ड शक्ति अनिवाय है। क्राति आधी की तरह है इसलिए आधी भी है। वह चोटी पर चढने के बदले खन्दक में गिर सकती है। क्रान्ति भवानी है रुद्राणी है पापो का विनाश करने वाली खड्गधारिणी है। [6] डा० राधाकृष्णन के अनुसार—' 'क्रान्ति शब्द का अथ सत्ता भीड की हिंसा और शासक वर्गो की हत्या ही नहीं समझा जाना चाहिए। सभ्य जीवन के मूल आधारों में तीव्र और प्रबल परिवतन की उग्र लालसा भी क्रान्तिकारी इच्छा है। क्रान्ति शब्द का अथ दो अर्थों में लिया जाता है। एक आकस्मिक और प्रचण्ड विद्रोह जिसके परिणामस्वरूप शासन का तख्ता उलट जाय जैसे फ्रांसीसी क्राति और रूस

१ Webster s New World Dictionary p 1247, London Macmillan
२ बृहत् हिन्दी कोश पृ० ४४८
३ Douglas—Forty thousand Quotations p 338
४ abid P 338
५ abid P 338
६ यू डी० शर्मा—परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ६१

की बोलशेविक क्रान्तिया । एक शनै शनै काफी लम्बे समय में होने वाला सामाजिक सम्बन्धो का एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली की ओर सक्रमण जैसे ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति ।'[1] श्री विश्वनाथ राय का मत है— क्रान्ति से हम लोगो का अभिप्राय समाज की व्यवस्था स है जिसमें पतन का भय न हो तथा जिसमें श्रमिको की राजसत्ता मान्य हो जाये और उसके फलस्वरूप विश्व सघ मानवता को पूँजीवाद दु ख तथा युद्ध के विनाश स सुरक्षित कर द —क्रान्ति मानव जाति का अविच्छेद्य अधिकार है।'[2] श्री नवीन' क शब्दो में—

> यह क्रान्ति है कि तुम करोगे हिंसा स हिंसा का मदन।
> क्रान्तिवाद क्या यही कि घहर इधर उधर तोपो का गजन। [3]

आग्ल परिभाषाएँ

' A sudden radical change in social organisation [4]

Revolution is a sudden and redical transformation of society affecting individual character destroying social evil and promoting mastership in art of life ' [5]

क्रान्ति का स्वरूप विश्लेषण

उपयुक्त परिभाषाओ के अध्ययन स हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि क्रान्ति एक परिवतनसापेक्ष प्रक्रिया या प्रतिक्रिया है। सुख शांति की चिन्ता तो प्रत्येक काल मे समाज उद्धारको को हमेशा उद्वेलित करती रही है किन्तु सृष्टि म विनाश तथा निर्माण ध्वस एव रचना की जो लीला चलती रहती है उसी का सामाजिक रूप क्रान्ति है। [6] प्रगति के लिए सामाजिक नतिक और राजनीतिक क्रान्ति अनिवाय मानी गयी है। क्रान्ति का क्षेत्र व्यापक है। नवीन विचारो तथा प्राचीन विचारो के बीच म मल न बैठने पर क्रान्ति जन्म लेती है। स्वतत्रता तथा समानता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। जब समानता तथा स्वतत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है तो मनुष्य के मन म विद्रोह की भावना जन्म लेती है। इसी प्रकार शताब्दियो स चली आ रही कुरीतियो क फलस्वरूप क्रान्ति या विद्रोह का जन्म होता है। गरीब और अमीर क वषम्य म विद्रोह भावना प्रस्फुटित होती है। य विद्रोही भावनाए ही अत म क्रान्ति का रूप धारण कर लेती हैं। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मैजिनी का कहना है—

१ डा० राधाकृष्णन्—धर्म और समाज (हिन्दी सस्करण) प १
२ विश्वनाथ राय—क्रान्ति प १
३ डा० रामचन्द्र शास्त्री 'रागेश'—कुंकुम काव्य (बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत एम विद्यार्थी जनम के) प १८
४ C. D Burns—The Principles of Revolution p 112
५ The Principles of Revolut on p 127
६ दिनकर—वैज्ञानिक क्रान्ति के परिप्रेक्ष में प० १२

'The real revolution only being when thought and imagination are at work to build up a new world'[1]

क्रान्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। शिक्षा क्रान्ति को जन्म देती है। शिक्षित जनता नवीनता लाना चाहती है। विचारक जनता को उत्तेजित करते हैं। वे ही उलट-फेर करने को जनमन में उत्तेजना लाते हैं। क्रान्ति का प्रारम्भिक रूप विचारों में जन्म लेता है। कहा भी गया है कि— 'Every revolution was first a thought in one man s mind'[2]

स्पष्ट है कि मूलतः क्रान्ति वैचारिक ही होती है। विचारों का उत्तेजक स्वरूप ही क्रान्ति का रूप धारण करता है।

क्रान्ति का समानधर्मी शब्दों से पार्थक्य

'क्रान्ति' और 'विध्वंस'

क्रान्ति और विध्वंस दोनों में हिंसा का मार्ग अपनाया जाता है। क्रान्ति का ही एक अंग विध्वंस है। क्रान्तिकारियों में लड़ने की शक्ति बराबर बनी रहती है। अपने पक्ष को मनवाने के लिए वे विध्वंस का सहारा ले सकते हैं। विध्वंस अंग्रेजी शब्द 'Riot' का पर्याय है। 'रिआट' का मतलब है— उपद्रव, कोलाहल, विप्लव, प्रजा क्षोभ (दंगा बलवा), शराबियों का उत्सव, आनन्द मचाना, बलवा करना, मर्यादा भंग करना।[3] जबकि क्रान्ति 'Revolution' का रूपान्तर है। रिवोल्यूशन का तात्पर्य है केन्द्र पर घूमना (भ्रमण) चक्कर, परिवर्तन उलट फेर राज्यपरिवर्तन।'[4] अतः क्रान्ति तथा विध्वंस में अन्तर भी है। 'क्रान्ति विप्लव एवं विध्वंस से पूर्णरूप से भिन्न है। उसकी भिन्नता इस तत्त्व में निहित है कि क्रान्ति निश्चयात्मक एवं निर्माणात्मक है। वह केवल एक गुट के स्वार्थों के स्थान पर दूसरे गुट के स्वार्थों का प्रवेशण नहीं है। वह सामाजिक संगठन की एक शक्ति है।'[5] अतः हम कह सकते हैं कि क्रान्ति और विध्वंस में मौलिक अन्तर है। विध्वंस क्रान्ति का एक अंश है जो सामाजिक कल्याण के लिए ही होता है। क्रान्तिकारी विध्वंस का मार्ग इसलिए अपनाते हैं कि सुधार में उनकी आस्था नहीं होती है।

क्रान्ति और आन्दोलन तथा विप्लव

व्याकरण अर्थ के आधार पर आन्दोलन से अभिप्राय है— 'आवा कम्प

१ Massini—The Principles of Revolution (C D Burns) P 55
२ Essays—History Emerson P 86
३ Bhargawa s Standard Illustrated Dictionary P 837
४ ibid P 831
५ On the principles of revolution P 55

अनुसन्धान, विवेचना परख, विप्लव उपद्रव।"[1]

'विप्लव में अंधाधुंध विनाश की भावना रहती है।'"[2] इस दृष्टि से क्रान्ति तथा आन्दोलन विप्लव आदि में तात्विक अन्तर है।

क्रान्ति और संघर्ष

'संघर्ष से अभिप्राय है— दो चीजो का आपस में रगड खाना, होड स्पर्द्धा द्वेष कामोत्तेजना, धीरे धीरे लुढकना रेंगना सरक।'[3] नालन्दा शब्द सागर की व्याख्या के अनुसार— रगड खाना घिसना प्रतियोगिता होड एक वस्तु की दूसरी वस्तु से होने वाली रगड फ्रिक्शन दो दलो में होने वाला वह विरोध जिसमें दोनो एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न करते हैं कानफिलक्ट।'[4] संघर्ष के सम्बन्ध में एक कोशकार का मत है— To contend or fight violently with an opponent [5] इस प्रकार क्रान्ति तथा संघर्ष म मौलिक अन्तर है। एक म उलट फेर की प्रवृत्ति मिलती है तो दूसरे मे फ्रिक्शन की। एक मे स्थिति के बदलने का भाव निहित है तो दूसरे मे दो दलो म होने वाला विरोध है जिसम दोनो एक दूसर को दबाने का प्रयत्न करते हैं।

क्रान्ति और सुधार

सुधार अंग्रेजी शब्द इम्प्रूवमेण्ट (Improvement) का पर्यायवाची है। सुधार से तात्पर्य है— दोष दूर करने या होने का भाव संस्कार इसलाह।[6] 'I—an improving or being improved, an increase in value or in excellente of quality anaddition or change that inproves—a person or thing representing—a higher degree of excellente—a change or addition to Land property etc to make it more valuable [7]

सुधार' और क्रान्ति' में मौलिक अन्तर है। सुधार निर्माण-कार्य करता है जिसकी गति धीमी होती है जबकि क्रान्ति हिंसात्मक होती है पूर्ण परिवर्तन ला देती है और तेज गति होती है। यहाँ शांति तथा क्रान्ति का भेद स्पष्ट है। सुधार एव क्रान्ति में दो विभिन्न मनोभावो के व्यक्तियो का विश्लेषण हो जाता है। उदाहरण के लिए— एक चाहता है कि उस मकान की कुछ मरम्मत कर दी जाय ताकि वह

१ पण्डित रामचन्द्र पाठक—आदर्श हिन्दी कोश
२ शिवदानन्द राय—दिनकर प० १९९
३ बृहत हिन्दी कोश प० १३७
४ श्री नवलजी—नालन्दा विशाल शब्द सागर प १३७५
५ Webster s New world Dictionary London Mecmillan and Co Ltd 1962 P 1447
६ बृहत हिन्दी कोश प० १४६८
७ Webster s New world Dictionary p 732

कुछ दिनों तक काम ले सके, यद्यपि अब उसमें रहना सुरक्षित नहीं है। दूसरा कहता है कि 'नहीं उसको नींव से गिरा देना चाहिए और बिलकुल नया भवन बनाना चाहिए अन्यथा पता नहीं कब वह गिर जाय और रहने वालों को भी साथ ही ले जाये। यह मतभेद सुधार और क्रांति में है।'[1] वस्तुत विध्वंस एवं सुधार का सम्मिलित रूप ही क्रांति है। क्रांति के विनाशात्मक रूप में विध्वंस है तथा रचनात्मक पक्ष में सुधार।[2] इस प्रकार क्रांति के दो पहलू हैं एक विध्वंसात्मक, दूसरा रचनात्मक। विनाश के पहलू में समाज की बुराइयों एवं हानिकारक रूढ़ियों का नाश अत्याचार एवं अन्याय का दमन होता है। उसका कार्य समाज के गलित अंग का मूलोच्छेदन है। उसके रचनात्मक पक्ष में नये समाज का निर्माण होता है तथा आदर्श सामाजिक व्यवस्था, सत्य, स्वाधीनता तथा न्याय आदि की स्थापना होती है।[3]

क्रांति के भेद प्रभेद

राजनीतिक क्रांति

राजनीतिक क्रांति प्रगति के लिए आवश्यक मानी जाती है। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात राजनीतिक चेतना का समाज में जन्म हुआ। राजनीतिज्ञ गरीब जनता पर अपना प्रभुत्व जमाने लगे। वे जनता के अधिकारों को कुचलने लगे। समाज में शोषित और शोषक वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ। शोषित वर्ग अपने प्राकृतिक अधिकारों पर हस्तक्षेप सहन नहीं कर पाता है और उसके मन में प्रतिक्रिया की भावना का उदय होता है और इस प्रकार राजनीतिक क्रांति का सूत्रपात होता है। यह राजनीतिक क्रांति दो प्रकार की होती है—(१) प्रथम प्रकार की क्रांति वह है जहां जनता का हाथ नहीं होता वरन शक्तिशाली दल अत्याचारी शासक के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। (२) दूसरे प्रकार की क्रांति वह है जिसमें जनता भी भाग लेती है। ये दोनों ही क्रान्तियां राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन लाती हैं।

सामाजिक क्रांति

मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति हो और सबको अपने विकास और उत्कर्ष का समान अधिकार प्राप्त हो—यह ध्येय लेकर ही समाजवादी चिन्तन का विकास हुआ है। समाज में सदैव से ही दो वर्ग (उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग) रहे हैं। निम्न वर्ग को उच्च वर्ग ने दबाकर उनकी निर्बलता से लाभ उठाया है। इसी कारण प्राचीन समाज में राजा प्रजा का भाव उत्पन्न हुआ। दूसरे समाज में उत्पन्न कुरीतियों जैसे—वर्ण-व्यवस्था दास प्रथा जाति व्यवस्था आदि ने भी समाज की अवनति की। अत

१ विश्वनाथराय—क्रान्तिवाद पृ ६८
२ जिनेन्द्र—वर्वारिक क्रान्ति के परिवेश में पृ० १७
३ जिनेन्द्र—वर्वारिक क्रांति के परिवेश में, पृ० १७

इन बुरीतियो का नाश करने म ही समाज का पुनर्निर्माण हो सकता है। इसके लिए सामाजिक क्रान्ति अनिवाय है। सामाजिक क्रान्ति के फलस्वरूप समाज एक नया मोड लेता है। सामाजिक विषमता जस—छुआछूत आदि विषैली भावना को क्रान्ति कारी दल समाज स उखाड कर फेंक देना चाहते हैं। समाज जब अन्याय और अत्या चारो से ग्रस्त हो जाता है तो उसके दो ही परिणाम होते हैं—या तो मानवता पर किये जा रहे भीषण अत्याचारो स भयभीत हो निराशा का जन्म होता है या फिर अत्याचारो के विरुद्ध आवाज उठती है। बस यही प्रेरणादायिनी शक्ति अन्तत क्रान्ति या विद्रोह क रूप म फूट पडती है। सामाजिक क्रान्ति स समाज नव जीवन चेतना प्राप्त करता है।

धार्मिक क्रान्ति

जब धम के नाम पर समाज म अत्याचार एव अन्याय का प्रचलन होता है तब उस धम के विरोध म धार्मिक क्रान्ति होती है। भारतवष धमप्रधान देश रहा है। अत यहा धार्मिक क्रान्ति अनेक बार हुई हैं। हिन्दू धम के विरुद्ध जन तथा बौद्ध धम का प्रचार धार्मिक क्रान्ति ही थी। आज भी इस क्रान्ति को प्रोत्साहित करने वाले अनेक सम्प्रदाय बन हुए हैं परन्तु यह क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति के समान महत्वपूण क्रान्ति नही है। समाज म जब धम के नाम पर अनेक आडम्बर प्रचलित हो जाते हैं तो उसका पतन होने लगता है। जस—हिन्दू धम का पतन उसके कमकाण्ड के कारण हुआ बौद्ध धम का पतन उसकी गुप्त साधना म हुआ। इन्ही सब बातो न धार्मिक क्रान्ति की जडें मजबूत की हैं।

आर्थिक क्रान्ति

आज के ससार म सघष का मूल कारण आर्थिक विषमता ही है। आर्थिक विकास के लिए मानव मानव म ही नही देश देशान्तर म भी होड लगी हुई है। आर्थिक विषमता के कारण दो वग बन जाते हैं—शोषण करने वाला वग अर्थात् पूजीपति वग तथा दूसरा शोषित वग अर्थात मजदूर वग। शोषण अधिक समय तक चल नही पाता और शोषित जनता उनके प्रति घृणा करने लगती है। यही घृणा एक दिन विश्व म आर्थिक क्रान्ति का रूप धारण कर लेती है।

सास्कृतिक क्रान्ति

सास्कृतिक रुग्णता किसी भी मनुष्य या राष्ट्र की सबस बडी कमजोरी है। उसके कारण सारी जाति का पतन हो जाता है। ऊँच-नीच छुआछूत आदि भेदो म फँस कर मानव जघन्य पाप करता है जिनके कारण समाज के अनेक वर्गों म आर्थिक और सामाजिक भेद भाव बढ जाता है। सास्कृतिक क्रान्ति का उदय विचार और व्यवहार व्यक्ति और समाज तथा अन्य अनेक इकाइयो के माध्यम स होता है। सास्कृतिक क्रान्ति की गति बडी धीमी होती है।

साहित्यिक क्रान्ति

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की प्रत्येक महत्वपूर्ण गतिविधि का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। जब समाज में अन्याय, विद्रोह या शोषण होता है तो साहित्यकार मूक रहकर भी अपनी लेखनी से प्रहार करता है। 'किसी का नाश किये बिना जो क्रान्ति होती है वह साहित्यिक क्रान्ति है। यह क्रान्ति दो रूपों में प्रकट होती है। एक ओर वह समाज में होने वाली क्रान्ति से प्रेरित होकर क्रान्ति के तत्वों का प्रचार करती है तो दूसरी ओर साहित्य के अभिव्यंजना शिल्प में परिवर्तन लाती है।'[1] समाज में अत्याचार अनाचार देखकर ही उसने वाल्टेयर, बाल मार्क्स, जार्ज दिलतक तथा महान् साहित्यकार साहित्यिक क्रान्ति की ओर अग्रसर हुए थे। इसके अतिरिक्त साहित्य के अभिव्यंजना शिल्प में—रूप, शैली, भाषा आदि की रूढ़ियों से अलग कर नये ढाँचे में सँवारने की दृष्टि से भी साहित्यिक क्रान्ति होती है। टालस्टाय का कथन है कि—'क्रान्तिकारी लेखक केवल भविष्य की सम्भावनाओं को वाणी देने में ही नहीं अपितु उन्हें स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करने के कारण ही युगद्रष्टा कहलाते हैं।'[2]

विश्व की महान क्रान्तियाँ

औद्योगिक क्रान्ति

समाज में आर्थिक असमानता के फलस्वरूप समाज में प्रमुखतः दो वर्ग बन गये—एक शोषक वर्ग अर्थात् पूँजीपति वर्ग, दूसरा शोषित वर्ग अर्थात् सर्वहारा वर्ग। पूँजीपति वर्ग के अन्तर्गत मिल मालिक तथा जमींदार लोग हैं तथा सर्वहारा वर्ग के अन्तर्गत मजदूर तथा किसान आते हैं। पूँजीपति वर्ग, सर्वहारा वर्ग का शोषण निरन्तर करता है जिससे वर्ग संघर्ष का जन्म होता है। मजदूरों के अलग संघ बन जाते हैं तथा औद्योगिक क्रान्तियों का जन्म होता है। औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम बड़े ही भयंकर होते हैं। उत्पादन-क्षमता में ह्रास आ जाता है तथा बेकारी की समस्या बन जाती है। औद्योगिक क्रान्तियों के घातक परिणामों का आज सारा विश्व शिकार है।

रूसी क्रान्ति

सन् १९१७ में घटित रूस की क्रान्ति का विश्व की महान क्रान्तियों में विशिष्ट स्थान है। आधुनिक युग में पूँजीवाद के विरुद्ध जो शक्तिशाली स्वर गूँजा उसका सूत्रपात रूसी क्रान्ति के माध्यम से ही हुआ। रूसी क्रान्ति का मुख्य आधार आर्थिक था। उच्च वर्ग के प्रति अविश्वास और घृणा की भावना ने निम्न वर्ग को क्रान्ति करने के लिए उत्तेजित किया। रूस की यह क्रान्ति दो चरणों में हुई। पहली क्रान्ति १ मई १९१७ को तथा दूसरी नवम्बर १९१७ को हुई। मार्च में हुई क्रान्ति में मजदूर किसान एवं सैनिक सम्मिलित होकर 'रोटी' के लिए नारे लगा रहे थे। यह

1 दिनकर—ऐतिहासिक क्रान्ति के पाँच वेग में, पृ० २४

2 Tolstoy —On Principles of Revolution—C B Burns, P 118

क्राति इतनी सशक्त हो गयी कि १५ माच १९१७ को जार निकोलन द्वितीय सिंहासन छोडने को मजबूर हुआ। फलस्वरूप रूस की समस्त जातियाँ एक हो गयी परन्तु क्राति पूणतया सफल नही हो पायी। इसलिए नवम्बर १९१७ को दूसरा दौर आरम्भ हुआ। इस क्राति म सरकार पूजीपतियो क अनुकूल थी अत किसानो, मजदूरो एव सनिको की मागो की उपेक्षा की गयी। परिणामत जन आक्रोश बढा और क्राति की ज्वाला भडक उठी।

फ्रासीसी क्राति

फ्रास की राज्य क्राति न यूरोप के प्राय सभी देशो म राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की थी। अठारहवी शती क अत म फ्रास म विश्व की सबस प्रभावशाली क्राति हुई जिसकी महान उपलब्धिया है—स्वतत्रता समानता और बधुत्व की भावना। इन्ही उपलब्धियो के कारण इस क्राति का व्यापक एव गहरा प्रभाव पडा। फ्रासीसी क्राति का मूल कारण सामन्तशाही थी। जमीदारो तथा मिल मालिको स दीन जनता पीडित थी। ऐसी हालत म जनता को एक मन्त्र दि सावर्नेटी आफ दी पीपिल रूसो न दिया। फ्रास की क्राति की मुख्य देन है—राष्ट्रीयता। फ्रास की यह क्रातिया दो बार हुई—१८३७ म तथा १८४८ म। इनके नाम भी अलग अलग रहे—एक राजनीतिक क्राति तथा दूसरी सामाजिक क्राति।

अमेरिकी क्राति

समाज जब दासता की बेडियो मे जकडा रहता है तो स्वाधीनता का नारा ही बुलन्दी से लगाया जाता है। जनता म इसका खब प्रचार होता है और फलस्वरूप क्राति की आग भभकती है। सन १७५६ से १७६३ तक इंग्लण्ड और फ्रास मे सप्त वर्षीय युद्ध हुआ। इस युद्ध म यद्यपि इंग्लण्ड की विजय हुई लेकिन बहुत सा धन खच हुआ। अत इस खर्च को पूरा करने के लिए इंग्लण्ड की सरकार ने अमरीकी लोगो पर कई तरह के कर लगाये। अमरीकी जनता ने इन करो का विरोध किया। उनका कहना था कि कर लगाने स पहले इंग्लण्ट की ससद म उनके प्रतिनिधि लिए जायें। अग्रेज सरकार ने इस बात को नही स्वीकारा और जबरदस्ती कर वसूल करने के लिए वहा सेना भेज दी। इस प्रकार इंग्लण्ड के पालियामण्ट के विरुद्ध अमरीकी जनता न सगठित होकर क्राति की। विश्व की प्रथम प्रजातन्त्रात्मक क्राति सन १७७६ म घटित हुई जिसका व्यापक प्रभाव विश्व पर पडा।

भारत मे क्रान्तियो का इतिहास

भारत के प्रथम क्रान्तिकारी गौतम बुद्ध थे जिन्होने धार्मिक आडम्बर के विरोध म आवाज उठाई थी। लेकिन भारत म स्वाधीनता के लिए प्रथम सघष सन १८५७ म हुआ। यह क्रान्ति सफल नहा हो पायी। क्योंकि सन १८५७ म भारत म राष्ट्रीय चेतना भली भाति उत्पन्न नही हुई थी। धार्मिक सुधारो के विविध आन्दोलनों

ने जहा भारतीय जनता का ध्यान आकर्षित किया, वहा नवीन शिक्षा के कारण उसे राष्ट्रीय भावना और लोकतन्त्रवाद के नये विचारो से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। इस प्रकार भारत मे नव-जागरण का प्रारम्भ हुआ। सन १८५७ मे इण्डियन नेशनल काग्रेस' की स्थापना हुई। अग्रेजो के साथ ही औद्योगिक क्रांति भी भारत मे आयी। फलत सामाजिक क्षेत्र मे क्रान्ति हुई। जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था के बधन ढीले पडने लगे। महात्मा गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस सर्वसाधारण जनता की संस्था बन गई और उसी के तत्वाधान मे भारत ने स्वतत्रता प्राप्त की।

ये विभिन्न आदोलन इस काल मे ब्रिटिश शासन का अन्त करने के लिए हुए थे। सामाजिक क्षेत्र मे भी सुधारात्मक क्रान्तिया हुई थी। ब्रह्म समाज आर्य समाज आदि की स्थापना हुई जातिवाद तथा बाल विवाह का विरोध और विधवा विवाह का समर्थन किया गया। इसी प्रकार धार्मिक अन्धविश्वासो तथा मूर्ति पूजा का विरोध हुआ। आर्थिक क्षेत्र मे देश को नायक जयप्रकाश नारायण का नेतृत्व मिला। किसानो तथा मजदूरो ने पूजीपतियो के विरुद्ध क्रान्ति की। १९३० ३१ मे गाधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ। इसी समय 'सविनय अवज्ञा आदोलन' शुरू हुआ। इन सभी का समन्वित परिणाम स्वतन्त्र भारत का निर्माण है। वस्तुत भारतीय क्रान्ति का इतिहास बडा व्यापक है। यहाँ क्रान्तिया सभी क्षेत्रो मे हुई। धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रो मे क्रान्तिया हुई।

दिनकर की क्रान्तिमन्त चेतना को प्रभावित और प्रेरित करने वाली विश्व-क्रान्तिया और क्रान्तिकारी विचारक

क्रान्तिकारी विचारको का प्रभाव दिनकर की काव्य चेतना पर स्पष्टत परिलक्षित होता है। आधुनिक युग मे क्रान्ति का बीज बोने का श्रेय जिन चिन्तको को है उनमे बेकन न्यूटन हाब्स कार्लमार्क्स टाल्सटाय और गाधीजी के नाम उल्लेख नीय हैं। अनेक समकालीन रचनाकारो ने भी दिनकर की काव्य चेतना को प्रेरित किया है।

उन्नीसवी शती के राष्ट्रचेता कवि बकिमचन्द्र चटर्जी का राष्ट्रवाद भारत की राष्ट्रीय चेतना श्रृखला का सुदृढ अग है। आपने वन्दे मातरम् का अमर स्वर देश को दिया। बीसवी शती के प्रारम्भ मे रवीन्द्र राष्ट्रीय चेतना के कवि के रूप मे विख्यात हैं। बग लक्ष्मी मातार-आह्वान हिमालय शान्ति यात्रा सगीत भारत-लक्ष्मी आदि रचनाए राष्ट्रीय भावनाओ मे ओत प्रोत हैं। नजरुल इस्लाम राष्ट्रीयता का स्वर लेकर आये। नजरुल की कविता ने एक जमाने मे बँगला साहित्य मे तहलका मचाया था। वे सन् १९१४ १८ के महायुद्ध के बाद एक धूमकेतु की तरह हाथो मे अग्नि-वीणा लेकर आये थे। दिनकर ने रवीन्द्र और नजरुल की विचारधारा का सामजस्य कर हिन्दी काव्य की राष्ट्रीय चेतना को पूर्ण दृष्टिकोण प्रदान किया।[1] ईश्वरचन्द्र

१ दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना पृ० ४८

गुहा की देश भक्ति भावनापूर्ण काव्य ने भी दिनकरजी पर अपना प्रभाव डाला। चिन्ता और चिन्ता तरंग नामक काव्य मे कमलाकान्त भट्टाचार्य ने राष्ट्रीयतापूर्ण भावनाओं से उदघोष किया है। इनके काव्य में बलिदान की भावना निहित है। क्रांतिकारी कवि अम्बिकागिरी डिम्बेश्वर नियोग तथा विनन्दचन्द्र बरुआ के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

दक्षिण के कवि सुब्रह्मण्यम का हृदय देश की आजादी के लिए तडपता था। उन्होंने अपने काव्य में भारतवासियों को दासता की बेडियाँ काटने की प्रेरणा दी है। दासन ने आर्थिक समानता विश्व बन्धुत्व तथा युद्ध के गम्भीर परिणामों पर विचार किया है। वेमना ने कबीर की भांति धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों अंधविश्वास तथा आडम्बर पर कुठाराघात किया है। वीरेश लिंगम सामाजिक चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। आपने सामाजिक दुर्बलताओं पर प्रहार किया। रायप्रोल सुब्बराव के काव्य मे अतीत के गौरव की झलक मिलती है। सीताराम मूर्ति चौधरी ने अपने काव्य में अतीत के गौरव के साथ नव जागति का सदेश दिया। विनायक की बात देगुल दलिल में तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं के साथ साथ नव जागरण को उभारा गया है। पश्चिम में रामदास ने हिन्दुओं को जागति का सदेश दिया। सावरकर देश वासियों के हृदय में क्रांति का उद्‌घोष भर रहे थे। आपका काव्य नवयुवकों में नव स्फूर्ति भरता है। दुर्गाप्रसाद आत्माराम तिवारी ने राष्ट्रीय भावना जनित काव्य लिखा। उत्तर में अब्दुल अहमद आजाद का काव्य देश प्रेम से परिपूर्ण है। उन्होंने राष्ट्रीय संकीर्णता के विरुद्ध विद्रोह किया। आपके साहित्य से सारा वातावरण क्रांतिमय हो गया था। नादिमपुरी तथा चेतन्य के काव्य में निर्धनता तथा श्रमिक वर्ग का क्रांतिमय स्वर गूंजता है। पंजाब में मोहनसिंह बाबा बलवन्त अमृता प्रीतम और सफीर ने ओजस्वी वाणी दी। आधुनिक युग की वास्तविकता और राष्ट्रीय चेतना का उदघोष नजीर अकबराबादी के काव्य में देखा जा सकता है। उनकी कविताओं देश भक्ति व मानव जाति का प्रेम स्पष्ट झलकता है। इससे पूर्व के कवियों पर सूफी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है उनके काव्य का सम्बंध जन जीवन से अधिक न था। जो दीप दिल्ली में सौदा दर्द और मीर ने जलाया था उसे १९वीं शती के कवियों ने और दिव्य कर दिया विशेषकर गालिब ने जीवन की बुझती हुई राख को कुरेदकर ऐसी चिंगारियाँ निकाली जिसमें ज्वाला की गर्मी और प्रकाश देखा जा सकता है।[1] मौलाना मुहम्मद आजाद ने दासता के बंधन तोडने का उपदेश दिया है। अकबर इलाहाबादी व्यंग्यपूर्ण शैली में अंग्रेजी राज्य पर विष के बाण चलाते हैं। हिन्दू मुस्लिम एकता की कविताएं लिखी। इकबाल ने सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा का स्वर दिया। जोश मलीहाबादी ने सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन के समय अधिक विषमता और सामन्तशाही के विरुद्ध क्रांति का गान गाया। सागर निजामी ने देश प्रेम हिन्दू मुस्लिम एकता के संबध में कविताएं लिखी। मखदूम माहियुद्दीन आधुनिक

१ सय्यद एहतिशाम हुसैन—उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ० १५४

साम्यवादी धारा के क्रान्तिकारी कवि हैं। अली सरदार जाफरी नव युग के क्रान्ति कारी कवि के रूप मे आते हैं। वस्तुत राष्ट्रीय कवि दिनकर पर समस्त राष्ट्रीय काव्यधाराओ का प्रभाव पडा। इसी के परिणामस्वरूप कवि ने स्वतन्त्रता तथा समानता का स्वर अपनाया। सभी दिशाओ से क्रान्ति का स्वर प्रस्फुटित हुआ जिसका सम्मिलित रूप दिनकरजी म देखने को मिलता है।

कुरुक्षेत्र म गाधीवाद तथा मार्क्सवाद का समन्वित प्रभाव देखने को मिलता है। यथा—

'धर्मराज ! यह भूमि किसी की नही क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी।'[1]

कार्ल मार्क्स की तरह कवि भी कहता है कि जब तक न्याय नही मिलता तब तक सच्ची शान्ति उपलब्ध नही होगी। यथा—

'न्यायोचित सुख सुलभ नही जब तक मानव मानव को।
चैन कहा धरती पर, तब तक शान्ति कहा इस भव को।[2]

दिनकरजी के काव्य म विश्व क्रान्तियो का प्रभाव भी देखने को मिलता है। नीम के पत्त' नामक रचना म कवि हमारा ध्यान इन्ही क्रान्तियों की ओर आकर्षित करते है—

'है कौन जगत् म जो स्वतन्त्र जनसत्ता का अवरोध करे ?
रह सकता सत्तारूढ कौन, जनता जब उस पर क्रोध करे।[3]

सामाजिक विषमता को देखकर कवि का मन शोषण के विरुद्ध अपनी वाणी मुखरित करता है—

रसा स बस अनाथ पाप प्रतिकार न जब कर पाते है
बहनो की लुटती लाज देखकर काप काप रह जाते हैं,
शस्त्रो के भय स जब निरस्त्र आसू भी नही बहाते हैं
पी अपमाना के गरल घूट शासित जब होठ चबाते है
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म लगन।'[4]

पूजीपति वग द्वारा सर्वहारा वग के शोषण का चित्र अनेक रचनाओ म है। दूध के लिए तडपने वाले शिशु को देखकर कवि का हृदय द्रवित हो उठता है। वह कृषक के साथ खलिहानो मे आसू बहाता है—

सूखी रोटी खायगा जब कृषक खेत म धरकर हल,
तब दूगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गगा जल
शिशु मचलेंगे दूध देख जननी उनको बहलायेगी,
मैं फाडूगा हृदय, लाज से आख नही रो पायगी,

१ कुरुक्षेत्र पृ ५१
२ वही पृ० १४१
३ नीम के पत्त पृ ५
४ हुकार—विपथगा पृ० ७१

इतने पर भी धनपतियों की उन पर होगी मार
तब मैं बरसूंगी बन बरस के आसू सुकुमार।[१]

साम्यवादी क्रांति के प्रवक्ता कार्ल मार्क्स का प्रसिद्ध कथन है—'पूंजीवाद अपने नाश के बीज स्वयं बोता है। यही स्वर दिनकर में मिलता है—

वैभव की मुस्काता में थी छिपी प्रलय की रेखा।[२]

दिनकरजी ने सर्वत्र ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मूल विषमताओं पर कुठाराघात किया है—

पर गुलाब जल में गरीब के अश्रु राम क्या पायेंगे ?
बिना नहाए इस जल में क्या नारायण कहलायेंगे ?
मनुज मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए ?
कैसे बचें दीन प्रभु भी धनियों के गृह में बन्द हुए ? [३]

अंधविश्वासी पण्डितों ने गांधीजी की इस नीति का विरोध किया तब दिनकर ने बिहार में घटित घटना को ध्यान में रखते हुए व्यापक युगधर्म की याद दिलाकर बोधिसत्व का आह्वान किया—

'जागो गांधी पर किए गए नरपशु पतितों के वारों से
जागो मैत्री निर्घोष ! आज व्यापक युग धर्म पुकारों से।
जागो गौतम ! जागो महान !
जागो अतीत के क्रांति गान।[४]

किसान-आन्दोलन को दबाने के लिए किये गये अमानुषिक और पाशविक कृत्यों का प्रतिशोध लेने के लिए दिनकर ने भूषण की भावरगिणी और लेनिन की क्रांति चेतना का आह्वान किया—

'देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें
बनती ही उन पर जाती हैं वैभव की ऊंची दीवारें।
धन पिशाच के कृषक मेध में नाच रही पशुता मतवाली
आगन्तुक पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली—
उठ भूषण की भावरगिणी ! लेनिन के दिल की चिनगारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला ! जाग-जाग री क्रांतिकुमारी।[५]

एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की संहारक तथा दमनक नीति और दूसरी ओर भारतीय जनता का त्याग का आदर्श अपनाने देखकर उन्होंने शांति का मंत्रपाठ किया—

'टांक रही हो सुई चर्म पर शांत रहें हम तनिक न डोलें,
यही शांति गरदन कटती हो, पर हम अपनी जीभ न खोलें।

१ रेणुका—कविता का पुकार पृ० १५
२ इतिहास के आंसू—वैभव की समाधि पृ० ६८
३ रेणुका पृ १८
४ वही पृ० १६
५ पृ० ३२

शोणित से रंग रही शुभ्र पट, संस्कृति निठुर लिए करवालें।
जला रही निज सिंह पौर पर दलित दीन की अस्थि मशालें।[1]

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व अन्तराष्ट्रीय स्थिति की पृष्ठभूमि मे लिखित एक कविता भी हुंकार मे संकलित है। इसी कविता मे दिनकर ने संसार को विश्वयुद्ध की ओर ढकेलने वाले हिटलर' जैसे तानाशाह पर प्रहार किया—

बहते चले आज खुल खुल कर लंका के उनचास पवन।
चोट पडी भूमध्य सिन्धु' मे 'नील तटी' मे शोर हुआ।'[2]

× × ×

राइन तट पर खिली सभ्यता, हिटलर खडा मौन बोले।
सस्ता खून यहूदी का है, नाजी निज स्वस्तिक घोलें।''[3]

आजाद हिन्द सेना के शौर्य और बलिदान की कहानी सरहद के पार' और 'फलेगी डालो मे तलवार' नामक कविताओ मे द्रष्टव्य है। कवि के शब्दो मे—

'यह झण्डा जिसको मुर्दे की मिट्टी जकड रही है
छिन न जाय इस भय से अब कसकर पकड रही है
थामो इसे शपथ लो बलि का कोई क्रम न रुकेगा,
चाहे जो हो जाय मगर यह झण्डा नहीं झुकेगा।'[4]

दिल्ली और मास्को' नामक कविता मे विश्व मे बहती हुई लाल लहर' के भीषण प्रकाश, भयानक विप्लव तथा उसकी शांति का चित्रण हुआ है—

बिल्लाते है विश्व, विश्व' वह जहाँ चतुर नर ज्ञानी
बुद्धि भीरु सकते न डाल जलते स्वदेश पर पानी।
जहा मास्को के रणधीरो के गुण गाए जाते
दिल्ली के रुधिरान्त वीर को देख लोग सकुचाते।[5]

निष्कर्ष

इस प्रकार दिनकर की काव्य चेतना के विकास क्रम का उनकी कृतियो के परिप्रेक्ष्य मे अध्ययन करने के पश्चात हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि उन पर विभिन्न क्रान्तिकारी विचारको और विश्वजनीन महान् क्रान्तियों की विचारणा का प्रभूत प्रभाव पड़ा है दिनकरजी स्वय कवि के अतिरिक्त प्रबुद्ध विचारक और युग चेता रचनाकार रहे हैं। अस्तु उनके काव्य चिन्तन मे युग जीवन के समुन्नत बोध और समकालीन चिन्तन धाराओ के पुष्कल प्रभाव का परिलक्षित होना स्वाभाविक ही है।

१ हुंकार पृ० २१
२ वही पृ ४२
३ वही पृ ४२
४ सामधेनी पृ० ६७
५ वही, पृ ६१

अध्याय ४

सामाजिक क्रान्ति

सामाजिक क्रान्ति से अभिप्राय

क्रान्ति उस महान मौलिक परिवर्तन को कहते हैं, जो राजनीतिक आर्थिक सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं का नाश करके सार्वजनिक हित के लिए समाज का उपयोगी एवं नियमानुसार संगठन करता है। यह ऐसी उथल पुथल होती है जो बहुत प्रभावशाली एवं व्यापक होती है। समय के अनुकूल समाज के आदर्श बदलते रहते हैं। जहाँ समय के अनुकूल सामाजिक परिस्थितियाँ परिवर्तित नहीं होती हैं वहाँ सामाजिक क्रान्ति होती है। समाज के लिए कुछ अभिशाप हैं जैसे वर्गवाद जातिवाद रूढ़िवाद छुआ छूत अज्ञान अंधविश्वास नारी शोषण सामन्ती प्रथाएं आदि। ये ही समाज को गर्त में ले जाते हैं। रूढ़िवादी रीतियों से जर्जरित जन मन विगत युगों की स्वार्थ वृत्ति कटुता वंश कुल दम्भ राग द्वेष, स्पर्धा, परनिन्दा सामुन्तता आदि सदृश कुरीतियों से ग्रस्त हो जाता है। जिसे वास्तव में टूटना था वह नहीं टूटा जातिपात नहीं टूटी सत्ता का अहंकार नहीं टूटा शिक्षा का प्रसार होने पर भी अज्ञान नहीं टूटा समृद्धि बढ़ी लेकिन आर्थिक विषमता नहीं टूटी।[1] वर्तमान समाज के आदर्श बदल चुके हैं और आज का मानव युग प्रवर्तन चाहता है, इस युग प्रवर्तन का ही दूसरा नाम क्रान्ति है।

साहित्य समाज तथा जीवन का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। साहित्य का जीवन से दुहरा सम्बन्ध है। एक क्रियारूप में दूसरा प्रतिक्रियारूप में। क्रियारूप में वह जीवन की अभिव्यक्ति है और प्रतिक्रियारूप में उसका निर्माता और पोषक है।[2] यही रूप हम क्रान्तिकारी कवि दिनकर के साहित्य में देखते हैं। बचपन से ही दिनकर जी को क्रान्ति से प्रेम था। एक तरफ कवि प्रकृतिप्रेमी है तो दूसरी तरफ क्रान्तिकारी। क्रान्तिकारी होने का कारण है— मनुष्य की विवशता उसे स्वीकार नहीं। ईर्ष्या राग विनाश द्वन्द्व क्षोभ घृणा विश्वासघात शोषण दोहन आदि को वह सब

1 डा रामरतन मिश्र—आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि पृ० ११७
2 डा० नगेन्द्र—विचार और विश्लेषण से उद्धृत

बिम्ब के द्वारा व्यक्त करता है।'[1] सामाजिक क्रांति का बीज दिनकर के काव्य में परिस्थितियावश पड़ा। वास्तव में दिनकर की कविता में अत्याचार, शोषण और सामाजिक वैषम्य के प्रति जो विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ है उसकी प्रेरणा के बीज सिमरिया की शोषित पीड़ित निर्धन जनता के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं में विद्यमान हैं।'[2]

दिनकर के काव्य में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति का आह्वान किया गया है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा अत्याचारों का अंत कर मानव समाज की समस्याओं का समाधान अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। दिनकरजी की सामाजिक क्रांति भावना का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

नवीन सामाजिक संरचना का संकल्प

'कवि की पुकार समाज की पुकार होती है। वह समाज के भावों को अपनी वाणी से शक्ति ही नहीं देता बल्कि नई दिशा नई चेतना और उद्बोधन भी देता है। समाज की मांगों और आवश्यकताओं को जन साधारण के सामने रखकर जहां उनमें उनके कर्त्तव्य की भावना जगाता है, वहां सामाजिक विकृतियों के प्रति विद्रोही भी बनाता है।'[3] क्रान्ति का अवलम्बन ग्रहण कर कवि सामाजिक विषमता को दूर कर नवीन विश्व का निर्माण करना चाहता है। एक विश्व का निर्माण जो स्नेह सिंचित न्याय पर निर्मित हो—

'श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान।
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण॥'

आदर्श समाज वहां होगा जिस समाज में ऐसी शोषणरहित, श्रेणीरहित व्यवस्था कायम हो जाने पर जिसमें देश के प्रत्येक व्यक्ति को जीविका निर्वाह का समान अवसर हो प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पाने का अधिकार हो समाज के सार्वजनिक और शासन सम्बन्धी कामों के प्रबन्ध में राय देने का हक हो किसी प्रकार का दमन और पराधीनता शेष नहीं रह सकती।[4] पूंजीपतियों द्वारा शोषित दीन हीन जनता का करुण क्रन्दन कवि सह नहीं पाता। दिनकर के लिए यह क्रंदन नोटों का गीत बनकर क्रान्ति का रूप ले लेता है—

'बपनाह जिम तरह रहे उड़ राजाओं के मुकुट हवा में।
इसी तरह ये नोट तुम्हारे पापी उड़ जाने वाले हैं॥'[6]

१ प्रो० विजेन्द्रनारायणसिंह—दिनकर एक पुनर्मूल्यांकन पृ० ५६ ५७
२ युगचारण दिनकर पृ० ६
३ प्रकाश नारायण—हिन्दी के पाँच लोकप्रिय कवि और उनका काव्य पृ० ११
४ कुरुक्षेत्र पृ० ११८
५ ममलाल—'गायात्री' की शब्द-परीक्षा पृ० १३७
६ नीलकुसुम, पृ० ६७

आदर्श समाज न्याय पर आधारित होता है। इसी सम-न्याय की माग करते हुए कविवर कहते हैं—

' न्यायोचित सुख सुलभ नही जब तक मानव को।
चैन कहा धरती पर तब तक शान्ति कहा इस मन को॥' [१]

नवनिर्माण के लिए कवि ऐसे पुरुष की कल्पना करता है जिसमें नर के समान तेज तथा नारी के समान कोमल हृदय हो जिसमें अनल और मधु का मिश्रण हो—

'कहा अर्धनारीश्वर वे अनल और मधु के मिश्रण,
जिनमे नर का तेज प्रखर था, भीतर था नारी का मन,
एक नयन सजीवन जिसका एक नयन था हालाहल
जितना कठिन खड्ग था कर मे, उतना ही अंतर कोमल। [२]

'समाज के लिए कर्मठ और स्वावलम्बी व्यक्तियों का विशेष महत्व है। [३] कवि इस व्यक्ति की छवि परशुराम मे देखता है। नये भारत का भाग्य पुरुष परशुराम' के शौर्यदीप्ति स्वरूप का अवतरण कवि ने किया है—

है एक हाथ मे परशु एक मे कुश है
आ रहा नये भारत का भाग्य पुरुष है। [४]

विवशता अन्याय और अत्याचार के समक्ष जनता घुटने टेक देती है। उनमे पौरुष का अभाव हो जाता है। निर्बल तथा अन्याय के विरुद्ध कवि ने प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति को अपनाया है। यथा—

सहता प्रहार कोई विवश कदर्य जीव
जिसका नसों मे नही पौरुष की धार है
करुणा क्षमा हैं क्लीव जाति के कलंक घोर
क्षमता क्षमा की शूरवीरो का सिंगार है।" [५]

कवि ने समाज के निर्धन प्रताडित दीन हीन, पिछडे लोगों को कर्ण के माध्यम से नयी दिशा प्रदान की है—

"जग मे जो भी निर्दलित प्रताडित जन है
जो दीन हीन है निन्दित हैं निर्धन है
यह कर्ण उन्हीं का सखा बन्धु सहचर है
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है। [६]

सचेत लेखक सामाजिक विकास की समस्याओं के प्रति उदासीन होकर शान्ति

१ कुरुक्षेत्र पृ० ११७
२ इतिहास के आंसू पृ० ३२
३ डा त्रिलोकी नारायण दीक्षित—प्रेमचन्द पृ० १७
४ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० १५
५ कुरुक्षेत्र पृ० ३८
६ रश्मिरथी, पृ० १०

स्वाधीनता जनतन्त्र और जातीय संस्कृति के लिए संघर्ष करते हैं।"[1] यही प्रवृत्ति दिनकरजी में है। चारों तरफ के दुरव्यवस्थित वातावरण को देख वे विकट समस्याओं का समाधान ढूँढते हैं। समस्याओं का समाधान पूँजीवादी बौद्धिकता के स्तर पर भी हो सकता है किन्तु स्थायी समाधान तो क्रान्ति के आधार पर ही संभव है। कवि के शब्दों में—

> "उत्तर के ग्राहकों!
> निराशा से घबराकर
> मरो नहीं कितना शक्ति यह देश
> नाप में बहुत बड़ा है
> देखो जहाँ वहाँ—
> दफ्तर, न कालेज कक्ष में
> सभा मंच में या विद्या के चबूतरे पर
> समाधान देने वाला निश्चित खड़ा है।"[2]

आज समाज में चारों तरफ आपाधापी मची हुई है। कवि इस आपाधापी से जन्मी क्रूरता को मिटाने के लिए क्रान्ति का आह्वान करते हैं—

> क्रान्ति धात्रि कविते! जाग उठ आडम्बर में आग लगा दे
> पतन पाप पाखण्ड जले जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।"[3]

दिनकरजी नवीन सामाजिक संरचना करना चाहते थे। वे मानते थे कि नवयुवकों पर ही समाज की नींव आधारित है। अतः उन्होंने नवयुवकों की नस नस में नय क्रान्ति रूपी रक्त का संचार करना चाहा—

> "स्वर को कराल हुंकार बना देता हूँ।
> यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूँ।
> शूरों को रण अंगार बना देता हूँ।
> हिम्मत को ही तलवार बना देता हूँ।
> लोहू में देता हूँ वह तेज रवानी।
> जूझती पहाड़ों से हो अभय जवानी।"[4]

कवि ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जो सुख, शांति, समता, बंधुत्व आदि मानवीय गुणों से परिपूर्ण हो। ऐसे समाज को लाने के लिए वह भारतीय युवक को फिर से दहाड़ने के लिए प्रेरित करता है। अब उसे फिर से एक बार सशक्त रूप से स्वतंत्रता आंदोलन की जोशीली हवा देना होगी। यही क्रान्ति का स्वर दिनकरजी का लक्ष्य है—

१ डा० रामविलास शर्मा—स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य पृ० १६
२ चेतना और कविता पृ० ६४
३ रेणुका पृ० ३१
४ हुंकार पृ० ६

'गरा कर धता सबको मारे किसी के मरेगा नही हिंद देश
लहू की नदी तरकर आ गया है कहीं स कहीं हिंद देश।
लडाई के मदान म चल रहे, लेके हम उसका उच्चा निशान,
खडा हो जवानी का झडा उडा ओ मेरे देश के नौजवान।'[1]

भारतीय युवक मुसीबता तथा आपदाओ स घबराने वाला नही है अत कवि भारतीय नवयुवको को सदा सघर्षो से जूझने की प्रेरणा दता है। भारतीय युवको म जागरण का उत्साहवद्धन करने का कवि प्रयास सवथा श्लाघनीय है—

जागरूक की जय निश्चित है हार चुके सोने वाले।
मजिल दूर नही अपनी दुख का बोझा ढोने वाले॥[2]

देश म सवत्र असमानता ऊच नीच अन्याय अभाव एव विषमता का बोलवाला है। एक तरफ गगनचुम्बी अट्टालिकाए हैं ता दूसरी तरफ घास फूस की रुग्ण झोपडिया। कवि की अवधारणा है कि यदि समय रहत यह असमानता की खाई पाटी नहा गयी तो फिर क्रान्ति होकर रहेगी—

अनसुनी करत रहे इस वेदना को
एक दिन ऐसा अचानक हाल होगा,
वज्र की दीवार यह फट जायेगी।
ज्वलपाती आग या मात्विक प्रलय का रूप धर कर
नीव की आवाज बाहर आयगी।[3]

समाज मे चारो ओर आपाधापी का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि सभी चीजा में घुलकर मिलावट की जाती है। यहा तक कि काला बाजारी औषधिया म भी व्याप्त है। यह कसे समाप्त हो ? जबकि पुलिस के उच्चाधिकारी इस दूर न करें। इस भ्रष्टाचार का विरोध करते हुए कवि की वाणी मुखरित होती है—

अजब हमारा यह तत्र है
नकली दवाइयो का व्यापारी स्वतत्र है
पुलिस कर जो कुछ पाप है।
चोर का जो खाना है पुलिस का भी बाप है।'[4]

परम्पराए केवल परम्पराए होने के कारण समाज पर लादी जाती हैं। वे बौद्धिक चेतना को क्षीण करती है। परम्परा का यह भार नव चेतना एक क्षण भी सहन नहीं कर सकती। 'रूढिवादी गर्गो को केवल एस नायकर्त्ताओ का दल ही ध्वस्त कर सकता था जिनकी नये मूल्या पर कट्टर आस्था थी।[5] कवि अनुभव करता है कि नव युग की चेतना का आगमन हो रहा है—

१ सामधेनी प ७२
२ हुकार प २४
३ नीलकुसुम प ७
४ परशुराम की प्रतीक्षा प ६२
५ रवीन्द्रनाथ टागुर (मनवान्द्र लाचन्द जोशी)—विश्व मानवता की ओर प ७

"छिटके उठने जा रहे नया
अकुर मुख दिखलाने को है,
यह जीण तनोवा सिमट रहा
आकाश नया आने को है।'[१]

इसका अनुभव करते हुए कवि नवयुवकों को क्रांति पथ स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

'नये स्वरों म शिजिनी बजा रही जवानियां।
लहू मे तर-तर के नहा रही जवानियां॥'[२]

स्वतत्रता के पश्चात देश पर कुर्बान होने वाले बलिदानियों की किसी ने कोई खबर तक नहीं ली। जिन्होंने राष्ट्र के लिए अपने को होम कर दिया जबकि क्रान्ति के लिए सर्वाधिक मूल्यवान तत्व है—बलिदान की भावना।[३] लोगों की स्वार्थवृत्ति को देख कर कवि हृदय क्षुब्ध हो उठता है—

'दो परी नहीं मानवी हम माता जो भारत भर की हो,
× × ×
प्यार से रोटी ही नहीं अगर तो लगा वक्ष से रोयें तो।[४]

चारों तरफ फैली हुई अशान्ति हिंसा शोषण दाहन दलन दमन एव वैषम्य कवि-मानस मे प्रबल हो उठता है। जातिवाद, राष्ट्रवाद और वर्गभेद से कराहते हुए विश्व के शोर म आँखें बद कर लेना उसके लिए असम्भव हो जाता है। सामाजिक और आर्थिक शोषण से किसान और श्रमिक त्रस्त हैं जीवन की सुविधाओं और सुख की बात तो दूर उन्हें जीने का भी हक नहीं है।'[५] तभी तो कवि कहता है—

'जनता की रोके राह समय म ताव कहा?
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है।[६]
× × ×
'वज्र की दीवार जब भी टूटती है,
नीव की यह वेदना विकराल बनकर फूटती है
दौड़ता है दप की तलवार बनकर
पत्थरों के पेट से नरसिंह ले अवतार,
कापती है वज्र की दीवार।

भ्रष्टाचार और लोभ से देश आज परेशान है। इसे दिनकर ने रचना स्तर पर अनुभव किया है—

१ सामधनी प २४
२ वही प २१
३ जगदीश कुमार—नयी कविता की चेतना प० ७३
४ दिल्ली प १८
५ वगचारण दिनकर (डा सावित्री सिन्हा) से उद्धृत
६ नीलकुसुम प ८६
७ वही प ७०

'टोपी कहती है मैं थैली बन सकती हू
कुरता कहता है मुझे बोरिया ही कर लो
ईमान वचाकर कहता है आखें सवकी
विकने को हू तयार खुश हो जो दे दो।"[1]

कवि का विश्वास है कि अब देश म क्रान्ति होने वाली है। कवि जनता की विवशता को जानते थे उन्होंने अपन ढग से क्राति को स्वर दिया। युवकों म अदम्य उत्साह तथा वीरता के साथ ओज भी भरा—

'हटो व्योम के मेघ पथ से
स्वग लूटने हम जाते हैं
दूध! दूध! ओ वत्स तुम्हारा
दूध खोजने हम जाते हैं।"[2]

× × ×

दुनिया के वीरो सावधान दुनिया के पापी जार, सजग,
जाने किस दिन फुकार उठे पदलित काल सर्पों के फण।"[3]

× × ×

"फिर डके पर चोट पडी है मौत चुनौती लिए खडी है
लिखन चली आग अम्बर पर कौन लिखाएगा निज नाम।[4]

वण व्यवस्था और जातिवाद का खण्डन

वण व्यवस्था तथा जातिवाद की समस्या निरतर भीषण रूप धारण करती रही है। आज प्रश्न यह उपस्थित है कि जब मानव मात्र भाई भाई है तो वग भद क्यो? सभ्यता के शिखर पर पहुच कर यह अनीति क्या? जातीय असमानता भारतीय भावात्मक अखण्डता को खण्डित करने के लिए बहुत सीमा तक उत्तरदायी रही है। अग्रेजो न भी कहा— आपकी जाति व्यवस्था गलत है। हमन तुरत जाति व्यवस्था को तोडन का निश्चय किया।[5] कवि क्षुब्ध होकर पुकार उठता है—

'आह सभ्यता के प्रागण म आज गरल वपण कसा?
दीन दुखी असहाय जनो पर अत्याचार प्रवन कसा?[7]

भारतीय वण व्यवस्था यद्यपि आरम्भिक काल म सुव्यवस्थित थी परतु धीरे धीरे वह हीन भावना स ग्रस्त होती गयी। वण व्यवस्था कम स नहीं जन्म-जात

१ नीम के पत्ते प ३३
२ हाहाकार प २८
३ विपथगा
४ प्रणति
५ डा व्रजमोहन शर्मा—धमवार भारती कनप्रिया तथा अन्य कृतियां प १४
६ रेणुका वा धमल प १८
७ डा काका साहब कालेलकर—युग मूर्ति रवीन्द्रनाथ प १३

होने लगी। यही समाज म ऊंच-नीच का भेद भाव होन लगा।" जब तक हम हीनतर मूल्यो के सदभ म अपनी प्रतिष्ठा का आधार विशिष जातीय मानदण्डो को मानने लगते हैं हमारी सामाजिक चेतना खण्ड खण्ड होन लगती है।[1] जाति कुल वण और वग के दष्टिकोण स जो जितना निम्न है वह उतना ही अधिक शोषित है।[2] छल कपट का व्यवहार करके निम्न वग को दबा लिया जाता है यही स्वार्थी लोगो की तुच्छ मनोवत्ति है। यथा—

मस्तक ऊंचा किय जाति का नाम लिए चलत हो
मगर असन म शोषण के सुख से पलते हो।
अधम जातियो स थर थर कांपत तुम्हार प्राण,
छल माग लिया करत हो अगूठे का दान।[3]

समाज म यह मान्यता प्रचलित है कि वश बडा हो तो व्यक्ति बडा होता है कवि इसका खडन करते हैं। कण सूतपुत्र था परन्तु उसकी भुजाओ का शौय जातीयता के झूठे आवरणो स छीना नही जा सकता था। कवि के शब्दो म—

"बडे वश स क्या होता है खोटे हो यदि काम।
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नही वश धन धाम।[4]

दिनकर को अपनी आशा के अनुरूप रश्मिरथी कण जसा नायक प्राप्त हुआ जो अपनी महत्ता स न केवल हमारे मानव को आप्लावित कर लेता है बल्कि हमारे समाज तथा साहित्य पर भी अमिट छाप डालता है।"[5] कण का गौरवमय जीवन निम्न वण के न केवल आसुओ को पोछता है अपितु युग युग स अभिशप्त वग को नयी दिशा देता है—

'जग म जो भी निर्दलित प्रताडित जन है।
जो श्रद्धा विहीन हैं निदित हं निधन हैं।
यह कण उन्ही का सखा बधु सहार है।
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।[6]

'जिस जाति म वह ज म लता है उसी के निर्धारित सामाजिक घटको पर वह चलता चला जाता है। यदि वह अयथा करता है तो रूढ़िया उस मसल देती है। फलत मानव घुट घुटकर रह गया।'[7] इस घुटन को नष्ट करन के लिए दिनकर का का य पूरी तरह सक्षम है। वे कहते हैं कि—

१ कमलाप्रसाद पाण्डेय—छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि प ४
२ डा विनोदिनीनारायण दीक्षित—समकाल प० ४६
३ रश्मिरथी प० ४
४ वही प० ७
५ मुप्राश—रश्मिरथी—समीक्षा भूमिका से उद्धत
६ रश्मिरथी प १००
७ डा रामचन्द्र मिश्र—श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूव स्वच्छन्दतावादी काव्य प० ५३

खून बहाया जा रहा इन्सान का सींग वाले जानवर के प्यार में।
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही, मस्जिदों की इंट की दीवार में।
ताब था किस कि बांधे कौम को एक होकर हम कहीं मुख खोलते
बोलना आता कहीं तकदीर को हिन्द वाले आसमां पर बोलते।"[1]

धर्मान्धताजन्य पागलपन से भारत की स्वतन्त्रता नष्ट होती है। हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारण देश में आन्तरिक संघर्ष होता है। इसी से प्रभावित होकर दिनकरजी आक्रोशपूर्ण स्वर में कहते हैं—

> जलते हैं हिन्दू मुसल्मान
> भारत की आँखें जलती हैं
> आने वाली आजादी की।
> लो दोनों पाँखें जलती हैं।
> व छूरे नहीं चलते छिदती
> जाती स्वदेश की छाती है
> लाठी खाकर भारत माता
> बेहोश हुई जाती है।[2]

दिनकरजी वर्ण व्यवस्था को अंगीकृत करते हैं पर कर्म के आधार पर जन्मजात आधार पर नहीं। कवि कर्म का पुजारी है। अतः ब्राह्मण क्षत्रिय की परिभाषा हेतु उसने इस प्रकार स्पष्ट कहा है कि—

> क्षत्रिय वही भरी हो जिसमें निर्भयता की आग
> सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है हो जिसमें तप त्याग।[3]

स्वार्थलिप्सा जनता में नये असन्तोष एवं निराशामय वातावरण को जन्म दे रही है। स्वार्थ साधना में लीन होकर उच्च जातियां सामान्य जन के हितों की सुध बुध खो बैठी है परन्तु कवि अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक है। जनता के हृदय में उभरते वर्गभेद की चेतावनी को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

> कहता हूँ ओ मखमल भोगियो श्रवण खोलो
> टुक सुनो विकल यह नाद कहां से आता है।
> है आग लगी या कहां लुटेरे लूट रहे
> वह कौन दूर पर गांवों में चिल्लाता है।[4]

वर्ण वैषम्य अभिजात भावनाओं की ही उपज कही जा सकती है। जाति के आधार पर उच्च वर्ग अपनी स्थिति समाज में बनाये रखना चाहता है। अस्पृश्य वर्गों की कल्पना अभिजात भावना के आधार पर ही हुई है। प्रस्तुत सन्दर्भ में कवि का अभिमत है—

१ हुंकार पृ ८०
२ सामधेनी पृ ३१
३ रश्मिरथी पृ २
४ कवि और समाज से उद्धृत

माना दीपक हो बडे दिय ऊचे कुल के
लेकिन मस्ती म अकड अकड कर क्या जलना ?
सब है परेड म खडे जरा तुम भी तन कर,
सिल सिला बाध हो पाए खडे कतारा म।'[1]

साम्प्रदायिकता की आग म श्रद्धा विश्वास क्षमा करुणा ममता का समथन करने वाले गाधी पशु बल पर मानव बल की जीत के प्रतीक थ। अधकार और घणा पर सत्य और करुणा की विजय को दिनकर न बापू के माध्यम स स्वीकारा है —

वह सुनो सत्य चिल्लाता है
ले मरा नाम अधेरे म
करुणा पुकारती है मुझको
आबद्ध घणा के घेरे म।[2]

केवल जाति और वण क आधार पर उपक्षित जातिया अत्याचारा का महत सहत थक जाती हैं। व भी उच्च वर्णो स सटकर अपन अधिकारा की माग करन लगती है। उच्च वग एक तरफ शाति की दुहाई दता ह तो दूसरी ओर रक्त पिपासु बनकर उभरता है। उस समय निम्न वण क्रान्ति का सहारा लेता ह। कवि ने उचित ही कहा है —

हमी पढे पाठ सस्कृति क
खडे गोलिया की छाया म
महा शान्ति, व मौन रहे
जब आग लगे उनकी काया म
चूस रह हो दनुज रक्त भर
हो मात दलित प्रबुद्ध कुमारी।
हो न कही प्रतिकार आपका
शान्ति कि यह युद्ध कुमारी।[3]

इस प्रकार हम देखत है कि दिनकर की काव्य कृतिया म जातिवाद का खडन क्रान्ति मत चेतना का ही एक आयाम है।

सामाजिक रूढियो, कुरीतियो और अन्धविश्वासो की अवमानना का स्वर

'मध्ययुगीन रूढियो का विरोध साहित्य के धरातल स भारतन्दु और द्विवेदीजी ने किया अवश्य पर अपन ढग स अपनी अपनी सीमाओ म रहते हुए।'[4] रश्मिरथी दिनकरजी की महनीय कृति ह जिसम परिवतनशील जगत के समक्ष हम रूढिवादिता एव वगभेद तथा जातिभेद आदि को त्याग कर सच्चे मानवीय गुणो का अपनान की

१ नीलकुसुम पृ ६६
२ बापू पृ २४
३ हुकार प २१
४ डा० प्रमराज भट्ट—निराला का गद्य-साहित्य प० २

शिक्षा दी गई है।'¹ सामाजिक रूढ़िवादिता की शक्तियां सबदा प्रबल होती है। पर भारत म बहुत पुरानी परम्परा क कारण उनका प्रभाव अप्रतिहत था। रूढ़िवादी गठो को केवल ऐसे कायकर्ताओ का दल ही ध्वस्त कर सकता था जिनकी नये मूल्या पर कट्टर आस्था थी।² सामाजिक जीवन को इन रूढियो का कई दिशाओ से चेतना मिली। आय समाज के तव और विवक न अ धविश्वासा को झकझोर दिया।³ दिनकर स पूव भारतेन्दु हरिश्च द्र ने भी जो कि क्रातिकारी कवि विचारक तथा आलोचक थे अधविश्वासो का खण्डन किया है। उन्होन लोगो के धार्मिक अध विश्वासा छूआछूत ऊच नीच के भेद भाव पडे पुजारियो और महन्तो के ढोग और पापमय जीवन की तीव्र आलोचना की।⁴ अ धविश्वास ही प्रगति के माग म बाधा डालते हैं। मानव या भगवान पर इतना अधविश्वास हो कि वह नपुसक हो कर बठ जाय। दिनकरजी इस नपुसकता पर खीच उठते है। व कहते है कि—

मर हुआ की याद भल कर किस्मत स फरियाद भले कर
मगर राम या कृष्ण लौटकर फिर न तुझे मिलने वाले हैं,
टूट चुकी है कडी पूजा के य फूल फेंक द अब दवता नही होते हैं।'⁵

दिनकर न भाग्यवाद की अवधारणा का खण्डन किया है। वे मानत हैं कि मानव भाग्यवाद का सहारा लकर छल कर रहा है। भाग्यवाद और कुछ नहीं पाप का आवरण मात्र है—

भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिसस रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।"⁶

दिनकर न रूढिया अधविश्वासो भाग्यवाद कुरीतियो आदि पर प्रहार किया है। कवि की दृष्टि म भाग्यवाद का सहारा लेना पाप है—

भाग्य-लेख होता न मनुज का,
होता कमठ भुज हो।'⁷
× × ×
उद्यम से विधि का अक उलट जाता है
किस्मत का पासा पौरुष स पलट जाता है।"⁸
× × ×

१ डा यतीन्द्र तिवारी—दिनकर की काव्य भाषा पृ० ६४
२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर (अनुवादक दलाचन्द्र जोशी)—विश्व मानवता की ओर पृ ७
३ शान्तिलाल भारद्वाज 'राकेश'—आधुनिक राजस्थानी साहित्य पृ १६
४ रामविलास शर्मा—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ ४८
५ नीम के पत्त नेना पृ २७
६ कुरुक्षत्र पृ १२
७ वही पृ १३५
८ रश्मिरथी पृ ५४

'विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं,
बाहों को पर कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं ।'[1]

कवि ने बड़े कड़े और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भाग्यवाद और कुछ नहीं छल है—

एक मनुज संचित करता है अर्थ पाप के बल से
और भोगता उसे दूसरा भाग्यवाद के छल से ।"[2]

भाग्यवाद में मनुष्य के शोषण के तत्व छिपे हैं। मनुष्य का भाग्य ही सब कुछ नहीं, उसका श्रम ही उसकी शक्ति है—

"नर समाज का भाग्य एक है
वह श्रम वह भुज बल है
जिसके सम्मुख झुकी हुई—
पृथ्वी, विनीत नभ-तल है ।[3]

नारी शोषण के प्रति आक्रोश

दिनकर ने नारी को नाना रूपों में देखा है—बाला प्रेयसी पत्नी पतिता, देवी गृहिणी तथा माता। दिनकरजी इस बात पर बल देते हैं कि समाज जब निवृत्ति के गर्त में गया तब-तब नारी का सम्मान घटा और जब जब समाज प्रगति की तरफ गया नारी की प्रतिष्ठा बढ़ी है। नारी 'कुलवधू' तथा मातृत्व का भार सम्भालती है पर युगो युगों से वह अपने अबलापन पर सिसक रही है। प्रेम की आकांक्षिणी नारी आज भी समाज की सेवा करती रहती है किन्तु इसके बदले में उसे आंसुओं की माला मिलती है। त्याग समर्पण सेवा के बदले उसे घृणा भय तथा बंधन मिलता है। यही नारी की विवशता है जिसने कवि दिनकर के मन में समाज के प्रति आक्रोश को जन्म दिया है। समाज से प्रताड़ित नारी को विवश होकर अपने अंश का भी त्याग करना पड़ता है। विवश नारी पर किये गये अत्याचारों की करुण कथा कुन्ती के माध्यम से कही गई है। यथा—

'बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी ।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को ।"[4]

दिनकर ने नारी को स्वर्ग की साक्षात मूर्ति कहा है—

'नारी का जग निर्दोष पूर्ण चिर सुन्दर है
कोमल गंभीर करुणा पूरित उसके मन का,

१ रश्मिरथी पृ० ५४
२ कुरुक्षेत्र पृ० १३४
३ वही पृ० १०८
४ रश्मिरथी, पृ० ८०

गधान जिम मिल गया, वथा वह वया साथ
भात पर गुलता द्वार यहा नन्दन वन का
पर स्वर्ग सुधा जितनी भी भूतल पर उतरी
अधरा के सुख का सुलभ यहा ना भी कण है
वह नारी है, केवल उसके ही पास यथ सौन्य
शांति कविता लीला का मिश्रण है। [1]

वास्तव में नारियों से ही मानव जीवन की पूर्णता सिद्ध होती है। बिना नारी के पुरुष अधूरा है उसका जीवन अपूर्ण है। [2] स्वामी दयानन्द ने पुन पूर्ण शक्ति से नारियों की स्थिति में सुधार लाने और नारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। [3] नारी की दुनिया विस्मृता वेदना और आसुओं से भरी है। नर को नहीं मालूम कि नर वसन्त है तो नारी वर्षा। नारी का यह करुण रूप नर की स्थिति के हेतु अपेक्षित है। नारी के नेत्र नीर में ही पुरुष समाज का जीवन हरा भरा रहता है। दूसरे शब्दों में नर यदि फल फूल। भरा वृक्ष है तो नारी उसकी जड़ें हैं। इस संसार में नारी ही दुख सुख की आधारभूता है—

सुख की तुम बादल हंसी आह दुनिया की
सुख दुख दानों में विभा इन्दु अमनिशा की
प्राणों की तुम गुंजार प्रेम की पीड़ा
रानी निशिका मधु और दीप्ति तुम दिन की। [4]

कहने का तात्पर्य यह है कि जो समाज नारी से घृणा करता है उसे यह नहीं ज्ञात कि नारी के ही दो रूप हैं—सुख दुख या आलोक और अंधकार। कवि समाज को बता देना चाहता है कि नारी के बिना सब शून्य है—

यह जनाकीर्ण जगती प्रिय! निर्जन ही तो है।
तुम नहीं अगर तो गृह विपण्ण वन ही तो है। [5]

सामाजिक दृष्टि से इन्दु विधवा जिस अमानवीय व्यवहार से पीड़ित है कवि की सहानुभूति उसके साथ है। [6] परम्परा से चला आ रहा नारी का शोषण पुरुष की अनुदार भावना का ही प्रतीक है। नारी की परम्परागत बीती कथा से कविमानस द्रवित हो उठा है—

पुतली में रख तस्वीर निठुर राजा की,
रानी रोती फिरती वन वन दीवानी। [7]

१ सीपी और शख पृ० ४०
२ डा० सुरेश सिन्हा—हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना आत्म कथन
३ आर० सी० मजूमदार—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आव इण्डिया (१९५३) लदन पृ ८८३
४ रेणुका पृ ४४
५ सीपी और शख पृ० ४६
६ रेणुका विधवा शीर्षक कविता से पृ० ९८ ९९
७ रेणुका, पृ० ४३

समाज नही समझता और स्वीकारता है कि जीवन की मूल प्रेरणा ही नारी से मिली है। नारी अबला है। वह पति पर निर्भर है। इस निर्भरता में वे क्षण भी आते है जब वह आसुओ को छिपा हँस पडती है और हसते हँसते रो पडती है। नारी की विवशता को कवि औशीनरी के शब्दो के माध्यम से उभारते है—

पति के सिवा योषिता को कोई आधार नही
जब तक है यह दशा नारी अन्यथा
आसू छिपा हँसेगी और हसते हसते रोयगी।[1]

उर्वशी महाकाव्य में दिनकरजी ने नारी की मर्म वेदना का अंकन किया है। दिनकरजी ने प्रस्तुत काव्य में नारी पात्रो को एक ओर तो वेदकालीन नारी की गरिमा से मण्डित चित्रित किया है तो दूसरी ओर वेदोत्तर काल से अद्यावधि नारी के प्रति पुरुष के स्वच्छाचारी व्यवहार, सामाजिक असमानता और उसकी विवशतापूर्ण स्थितियो का भी मार्मिक अंकन किया है।[2] नारी की जिस मूक वेदना का इतिहास प्रस्फुटित नही करता उसे दिनकरजी ने वाणी दी है—

नारी क्रिया नही वह केवल क्षमा, शाति, करुणा है
इसीलिए इतिहास पहुचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या फिर कविता बन जाता है।[3]

नारी के लिए ममत्व सबसे बडी वस्तु है। नारी के लिए प्रिया धर्म से भी बढ कर मातृत्व धर्म है किन्तु क्रूर समाज उस मातृत्व धर्म का भी शोषण करने से बाज नही आता। नारी अपने को सकट मे डालकर भी मातृत्व गौरव की सरक्षा करती है—

पर मै न प्राण की इस मणि को छोडूगी।
मातृत्व धर्म से मुख न मोडूगी।
यह बडे दिव्य उन्मुक्त प्रेम का फल है
जैसा भी हो वेगा मा का सम्बल है।[4]

स्वातन्त्र्योत्तर उन्नति के साथ ही नारी समाज भी अब उन्नति करना चाहता है। वह भी समाज को बता देना चाहती है कि वह स्वतन्त्र है। अनास्था क्षोभ और पुरुष की ज्यादतियां समाज की कुरीतिपूर्ण प्रतिबन्धो ने नारी के मस्तिष्क मे आज यह पूरी तरह बठा दिया है कि अब वह पुरुष की दासी बन कर नही रहेगी।[5] कवि ने विवश नारी की मनोदशा को जो अतीत से चली आ रही है उसे समझा है और आक्रोश प्रगट किया है। दिनकरजी नारी को पराधीनता की बेडियो से मुक्त करना चाहते

१ उर्वशी पृ ४०
२ डा० देवीप्रसाद गुप्त—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य पृ २४०
३ उर्वशी पृ १६४
४ रश्मिरथी पृ ८८
५ सत्यप्रकाश मिलिन्द स० —हिन्दी की महिला साहित्यकार पृ० २

रेणुका की 'बोधिसत्व' कविता दिनकरजी ने अछूतोद्धार आन्दोलन की प्रेरणा से लिखी है। उन्होंने गांधीजी की अहिंसा नीति का विरोध किया है, किन्तु अछूतोद्धार नीति को अपनाया है। कवि ने घृणा दिलाकर मोक्ष प्राप्त करने वाले धर्म की भर्त्सना की है। समाज की इस कुव्यवस्था पर उन्होंने पैना व्यंग्य किया है—

'पर गुनाह जल में गरीब के अश्रु राम क्या पायेंगे?
बिना नहाए इस जल में क्या नारायण कहलायेंगे?
मनुज मेघ के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए?
कैसे बचें दीन प्रभु भी, धनियों के गृह में बन्द हुए?'[1]

कवि ने अछूतों के उद्धार की बात अनेक प्रकार से अपनी लेखनी से प्रकट की है। इसीलिए वे ब्राह्मण वर्ग की अनीति के विरुद्ध भी क्रान्ति का उद्घोष करते हैं—

'अनाचार की तीव्र आंच में अपमानित अकुलाते हैं।
जागो बोधिसत्व! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं,
जागो, विप्लव के वाक्! दम्भियों के इन अत्याचारों से
जागो, हे जागो तप निधान! दलितों के हाहाकारों से।'[2]

अस्पृश्यता की विषैली भावना भारतीयता के नाम पर कलंक है जो भारतीय संगठन को खोखला बना रही है। कवि ने बोधिसत्व में इन्हीं अछूत कहलाने वालों का प्रतिनिधित्व का भार सम्भाला है—

'धन पिशाच की विजय, धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई
दौड़ो बोधिसत्व! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई।
मनुष्य मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए
कैसे बचें दीन! प्रभु भी धनियों के गृह में बन्द हुए।'[3]

नैतिक-आचरण

कवि समाज के तथाकथित पतित नैतिक आचरण की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। समाज में ऊँच नीच निरन्तर बढ़ती जा रही है। 'कामायनी' के समान समरसता की भावना भी कवि ने अपने काव्य में दर्शायी है। कवि विषमता से पीड़ित जन का समर्थक बनकर समानता की मांग करता है—

सबसे पहले यह दुरित-मूल काटो रे
समतल पीटो खाइयां पाटो रे
बहु पाद वटो की शिरा, सार छाटो रे,
जो मिले अमृत सबको समान बाटो रे।"[4]

१ रेणुका, पृ० २६
२ वही पृ० २६
३ वही, पृ० २६
४ परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ३०

'जब समाज म शाति है, सुख है नतिक आदश और धम है उस स्थिति तक साहित्य दपण रूप रहे किन्तु जहा नराश्य पतन, भ्रष्टाचारादि का आगमन हो तो फिर साहित्य को समाज का केवन प्रतिनिधित्व ही नही बनाना है, अपितु समाज निर्माणाथ पथ प्रदशन भी करना ही है।"[1] दिनकरजी का काव्य न केवल समाज का दपण है अपितु समाज का सच्चा माग दशक भी है। कवि मानव मात्र म समरसता के सिद्धात को स्वीकारा है। उस विनाश और सष्टि म कोइ भेद नजर नहा आता। उसने दुख सुख दोनो ही को एक भावना मे स्वीकारा है। तभी समाज म नतिक आदर्शों की पुनप्रतिष्ठा सभव है। यथा—

'पर मनुष्य की आग दान पाकर कुछ बुझ जाती है।"[2]

× × ×

कौन कहे सष्टा ही हो जा हम दीखता यम है।'[3]

समाज के निर्माण के लिए कवि समरसता लाना चाहता है—

"साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार

कब खिलगी, कब खिलेगी विश्व म भगवान्।'[4]

× × ×

'ऊच-नीच का भेद नही था जन जन म समता थी।'[5]

परम्परागत नतिक-आचरण के खोखलपन को मिटा कर ही नये मूल्यो की स्थापना सभव है यह दिनकरजी की बद्धमूल धारणा थी।

नवीन सामाजिक मूल्यो की स्थापना

नव जागरण के लिए कवि ने राणा प्रताप चन्द्रगुप्त आदि एतिहासिक महा पुरुषो के कृतित्व का स्मरण किया है। सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए वह गौतम बुद्ध के महान् आदर्शों का स्मरण दिलाता है—

'जागो मैत्री निर्घोष ! आज व्यापक युग धम पुकारा रे।
जागो गौतम जागो महान जगती के धम तत्त्व,
जागो ! हे जागो ! बोधिसत्व।'[6]

दिनकरजी चूकि क्रातिकारी कवि थे अत उन पर छायावाद के रोमानी भावबोध और विलासी जीवन का प्रभाव नही पड़ा। वे विलासी जीवन से तो घृणा करते थे। उनके सामने यह दारुण स्थिति थी कि—

१ डा० मनमोहन शमा—निबन्ध सिन्धु पृ० १२
२ कोयला और कवित्व पृ० २०
३ वही पृ० ५१
४ कुरुक्षेत्र पृ० ११८
५ कुरुक्षेत्र पृ १३६
६ रेणुका पृ० १६

"व भी यही दूध से जो अपने श्वानो को नहलाते है,
ये बच्चे भी यही नत्र मे दूध-दूध चिल्लाते हैं।"[1]

आदश समाज का निर्माण तभी सम्भव है जब व्यक्ति मात्र सुखी हो। वे मानते थे कि व्यक्ति का कत्तव्य अपने स्वाथ का त्याग कर समष्टि के उत्थान म लगना है—

व्यक्ति का है धम तप करुणा क्षमा
व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का,
भूलना पडता हम तप त्याग को।"[2]

'भारतीय मस्कृति म दान की महिमा अनादि काल स स्वीकृत रही है। दान-कम को पुराण पथी कह कर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है।'[3] दिनकरजी न मानव मन म त्याग अर्थात दान की भावना नय रूप म उभारने का प्रशस्य प्रयास किया है—

'जीवन का अभियान दान बल स अजस्र चलता है।"[4]

× × ×

दान जगत् का प्रकृति धम है, मनुज व्यथ डरता है।'[5]

कवि का आह्वान है कि या तो समाज विनोबा, गाधी क त्यागपूण आदर्शों का अनुसरण करे या फिर क्रांति के लिए तैयार हो जाए—

'पहुंच गयी है घडी फसला अब करना ही होगा।
दो म एक राह पर पगरा ! पग धरना ही होगा।
गाधी की नो शरण वदन डाला मिन कर ससार।
या फिर रहा वस्कि के हाथा कटन को तयार।'[6]

लोगा करोडा जना की दुदशा देखकर कवि के हृदय म करुणा जागत होती है। करुणा के माध्यम स दिनकरजी का स्वर फूटता है तो वही हुकार म भी बदल जाता है। व लिखते है—

"वशी पर मैं फूकता हृदय की करुण कूक।
जाने क्यो छिद्रो से उठती है लपट लूक।"[7]

कवि राग शृगार स समाज की दृष्टि हटाकर भरवी हुकार या क्रांति का राग अलापना चाहता है। विश्व के मानचित्र पर भारत का नतमस्तक नही देखना चाहता है। वह तो वीणा के तारा का तोडकर गरल पीने को भी बाध्य करता है—

१ हुकार—हाहाकार पृ० २३
२ कुरुक्षेत्र प० २२
३ डॉ० देवीप्रसाद गप्त—स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य पृ० १६१
४ रश्मिरथी पृ ६
५ वही पृ० ६१
६ नीलकुसुम प ७३
७ हुकार, पृ ४

'फेंकता हू लो ताड मराड अरी निष्ठुर बीन के तार।
उठा चादी का उज्ज्वल शख फूकता हू मरव हुकार।
नही जीते जी सकता देख विश्व म झुका तुम्हारा भाला।
वेदना मधु का पीकर पान आज उगलूगा गरल कराल।'[1]

शोषण स समाज का बचाने के लिए कवि न साम्यवादी हिसक क्रान्ति का अध समथन नही किया वरन् त्याग भावना का भी महत्ता दी है। यथा—

और सत्य ही कण दान सचय करता था।
अर्जित कर वह विभव निस्व दीनो का घर भरता था।
गो धरती गज वाजि अन्न धन वसन जहा जा पाया।
दानवीर न हृदय खोलकर उसका वही लुटाया।
मघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर स
याचक फिर सकते निराश पर नही कण के घर स।'[2]

× × ×

'दान जगत् का प्रकृत धम है मनुज यथ डरता है
एक रोज तो हम स्वय सब कुछ देना पडता है।'[3]

अन्य बिन्दु

दिनकरजी न जीवन के सभी क्षत्रो म क्रान्ति की आवाज उठायी है। तत्कालीन भारत दासता की बेडियो को तोडन क लिए आतुर था। कवि ने अतीत का गौरव-गान सुनाकर वतमान म नवचेतना का सचार किया। अतीत की अरुणिमा को भारतवासियो के मन म फिर स जगाया। यथा—

'नय प्रात क अरुण तिमिर उर म मरीचि सधान करो।
युग के मूक शल उठ जागो, हुकार कुछ गान करो।'[4]

क्रान्तिकारी दिनकर क काव्य क अनुशीलन स यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत से कवि का हृदय क्षोभ स भरा दिखाई देता है। कवि जन मानस म क्रान्ति तथा विप्लव का स्वर भरने के लिए प्रयत्नशील है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषको स समाज को बचाने हेतु कवि कहता है कि—

'उस पुण्य भूमि पर आज तपी रे आन पडा सकट कराल।
व्याकुल तरे सुत तडप रहे डस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।'[5]

भारतीय जन जीवन दासता की शृखलाओ म निबद्ध था। न तो वह अपने हृदय की

१ हुकार पृ० १०७
२ रश्मिरथी पृ ४६
३ वही
४ हुकार पृ०३
५ वही. पृ० ६०

आवाज को ही बुलन्द न कर पाता था और ना ही पक्षी की भांति उन्मुक्त गगन मे पख फैलाकर उडान ही भर सकता था। मानव-जीवन पशु स भी हीनतर हो गया था तभी तो कवि का करुण एव साक्रोश स्वर फूट पडा—

"चारा दिशि ज्वाला सिंधु घिरा,
धू धू करती लपटें अपार।
बदी हम व्याकुल तडप रहे,
जाने किस प्रभुवर को पुकार।"[1]

शोषण का भीषण चित्रण कवि की इन पक्तियो म मिलता है—

'धन पिशाच के कृपक मेघ म नाच रही पशुता मतवाली।
आगन्तुक पीते जाते हैं दीनो के शोणित की प्याली।"[2]

ऐसे अवसरा पर कवि को अतीत का स्मरण हो आता है। त्याग और बलिदान को ही कवि ने बासती वभव कहा है। राजस्थान के जौहर बलिदान और त्याग से कवि सामान्य जन को प्रेरणा ग्रहण करने की बात कहता है—

'देख शून्य कुवर का गढ है, झासी की वह शान नही है।
दुर्गादास प्रताप बली का प्यारा राजस्थान नही है।
जलती नही चिता जौहर की, मुटठी मे बलिदान नहीं है।'[3]

× × ×

'सुन्दरिया को सौंप अग्नि पर निकले समय पुकारो पर।
बाल वृद्ध औ तरुण विहँसते खेल गये तलवारों पर।"[4]

कवि अतीत के सत्य को वतमान म भी साकार करने का अभिलाषी है। वह पुराण प्रख्यात परशुराम से तेज और ओज की याचना करता है। इतिहास के सभी प्रसगो स वह समाज को जागति प्रदान कराने का आह्वान करता है—

'ताण्डवी तज फिर से हुकार उठा है।
लोहित म था जो गिरा कुठार उठा है।'[5]

दासता की बेडिया मे बँधा इसान कुछ भी नही कर पाने की क्षमता नही रखता है। दिनकर के का य म सवत्र ही भारत की उद्यान म स्वतत्रता की कोयल कूक उठी है। दासता जब मानवता के सिर पर दत्य के रूप मे मँडरा रही थी तब कवि न कहा—

परवशता सि धु तरण करके तट पर स्वदेश पग धरता है
दासत्व छूटता है सिर स पवत का भार उतरता है।'[6]

१ रेणुका प० १०६
२ वही प ३२
३ हुकार पृ० ३६
४ वही प ४०
५ परशुराम की प्रतीक्षा, प० ६
६ धूप और धुआँ पृ ३८

कवि की सहानुभूति सदव ही म पुत्रा के साथ रहती है। विनोबा की भूदान-नीति ने कृपको के हृदय की धधकती ज्वाला का शान किया। कवि की दृष्टि म विनोबा कृष्ण के रूप म जमीदारो और कृपका के बीच स्नेह सधि कराने आये हैं—

कृष्ण दत बनकर आया है सधि करो सम्राट,
मच जायगा प्रलय कही वामन को पडा विराट। [1]

उच्च वग निम्न वग का खून चूस कर रेशमी नगरा म नित नया रग भरते हैं और मामा य जनता अपने मूल अधिकारा म वचित रही ह। कोरे आश्वासन पर जनता टिक नही सकती। जनता शोपण म त्रस्त है। इसके विनाशकारी परिणामा से अवगत कराते हुए कवि जनता म चेतावनी का स्वर उभारते हैं—

ओ होश करो दिल्ली के देवो ! होश करो,
सब दिन ता यह मोहिनी न चलन वाली है
होती जाती है गम दिशाआ की सासें
मिट्टी फिर कोई आग उगलन वाली है। [2]

दिनकर का क्रांतिकारी रूप 'रसवन्ती' म निराशा निर्वेद और पलायन के स्वर म सुनाई पडता है। कवि दीन और दलितो को दखकर निराशा य नास्तिकता का भी अनुभव करता है—

दीन दलितो क क्रन्दन बीच आज क्या डूब गये भगवान। [3]

कवि महला म जीवन व्यतीत करन वाला नही अपितु कुश कुटीरो म प्रवेश करने वाला है। कपक का शापण पहले विदेशी साम्राज्य ने किया और अब जमीदार करते है। कपको का कवि इस शोपण स परिचित करत हुए उन्हे क्रांतिकारी प्रेरणा दता है—

ऋण शोधा के लिए दूध घी बेच बेच धन जोडेंग।
बूद बूद बेचेगे अपने लिए नहा छोडेंग
शिशु मचलेंग दध दख जननी उनको बहलाएगी।
मैं फाडूगा हृदय लाज स आख नही रो पायगी।
इतने पर भी धनपतियो की उन पर होगी मार
तब मैं बरमूगी क्या वेदरा क आसू सुकुमार ?
फटेगा भूधा हृदय कठोर चलो कवि वन फूला की ओर। [4]

दासत्व से मुक्ति का आदश कवि चन्द्रगुप्त के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यथा—

'गुरु कहत ह दासत्व आर्यों के लिए नही है। [5]

१ नीलकुसुम पृ० ७३
२ दिल्ली
३ रसवन्ती प ७
४ रेणका प १६
५ इतिहास के आसू प ११७

देश-व्यापी किसान आन्दोलन, साम्प्रदायिक झगड़े, आर्थिक शोषण नीति आदि ने कवि की वाणी को युग वाणी में परिवर्तित कर दिया है—

> लाखों क्रौंच कराह रहे हैं,
> जागो आदि कवि की कल्याणी ?
> फूट फूट तू कवि कंठों से
> बन व्यापक निज युग की वाणी।"[1]

निष्कर्ष

इस प्रकार दिनकरजी की विभिन्न काव्य कृतियों के माध्यम से निरूपित सामाजिक क्रान्ति के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कवि समाज का एक सतत जागरूक द्रष्टा रहा है। उसने अपने सृजन के आरम्भिक दौर से ही सामाजिक जीवन की विभीषिकाओं को सचेतन स्तर पर आत्मसात् किया है और उन्हें युगानुरूप अपनी प्रत्येक कृति में अभिव्यक्ति प्रदान की है। समाज के पददलित पीड़ित और शोषित वर्गों (विशेष रूप से कृषक, श्रमिक आदि) के प्रति उसके मन में सकरुण आक्रोश की ज्वाला सदा ही धधकती रही है और अन्ततः यही क्रान्तिमन्त चेतना का स्वरूप अधिग्रहण कर काव्य कृतियों में अभिव्यंजित हुई है।

१. रेणुका पृ० ३२

अध्याय ५

राजनीतिक क्रान्ति

राजनीतिक क्रांति का स्वरूप विश्लेषण

परतन्त्रता के नाश के लिए होने वाली क्रान्ति 'राष्ट्रीय क्रांति' कही जाती है। इस क्रांति में जनता को अपनी पूर्ण शक्ति का उपयोग करना पड़ता है इसका विरोध उग्र रूप से होता है। विदेशी सत्ता क्रान्ति को रोकने के लिए क्रूर साधनों का प्रयोग करती है। वह जनता का शोषण करती है दमन करती है और जनता को आतंकित करती रहती है। ऐसी दशा में क्रांतिकारी कार्यों के संचालन में बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी क्रांतिकारी शासकों का सामना करते रहते हैं संघर्ष करते रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर प्राणों का भी बलिदान करते हैं। राष्ट्रीय क्रांति की यह विशेषता है कि सम्पूर्ण जनता का हाथ इसमें रहता है। अन्त में न्याय की जीत होती है। यह विशुद्ध राजनीतिक क्रांति का स्वरूप है।[1] क्रांति सत्य की सच्ची आवाज है। वह राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन का निरोगीकरण करती है।[2] राजनीतिक शब्द राष्ट्र के संदर्भ में प्रयुक्त है। 'राष्ट्र' शब्द अंग्रेजी शब्द 'नेशियो' का पर्याय माना जाता है। नेशन की व्युत्पत्ति लैटिन 'नेशियो' से हुई है। 'नेशियो' का अर्थ है—जन्म अथवा जाति। धीरे धीरे जब भारतीय भावना का उदय हुआ तब 'राष्ट्र' जातीयतारहित राजनीतिक धारणा के रूप में ग्रहण किया जाने लगा।[3] डा० जे० पी० गर्ग के अनुसार — राष्ट्रीयता का सार एक राष्ट्र की आत्मचेतना है। यह चेतना राष्ट्र को इसलिए मानकर उसके परतन्त्र रहने पर स्वतन्त्र बनाने के लिए, राष्ट्रीय राज्य रहने पर उसकी शक्ति एवं सम्मान की वृद्धि के लिए प्रवृत्ति जाग्रत करती है। इस प्रकार 'राष्ट्रीयता' जन समूह की राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्र के प्रति उनके प्रेम भाव को प्रकट करता है।[4] अतः राजनीतिक क्रांति की प्रबल प्रेरणा शक्ति राष्ट्रीयता ही है।

१ दिनकर व्यापारिक क्रांति के परिवेश में पृ० २०
२ विश्वनाथ राय—क्रान्तिकार पृ० ५
३ डा० इन्द्रमोहन कुमार सिंहा—प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज पृ० १८०
४ [illegible]

राजनीतिक क्रांति एक विशिष्ट प्रकार की क्रांति है। इसमे प्रधानत बाहरी शक्ति से राष्ट्र की रक्षा का भाव निहित होता है। समाज मे राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि से निम्न वर्ग दबता जाता है। शासक वर्ग के शोषण के कारण भी राजनीतिक क्रांति का सूत्रपात होता है। राजनीतिक क्रांति अधिकतर एक ही राज्य से सबधित होती है।

राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि

'जाति भाषा सामाजिक स्थिति आदि विभेदो के कारण प्राचीन भारत मे राष्ट्रीयता का विकास नही हो सका।'[1] किन्तु समय ने करवट ली और दलित और पीडित वर्ग के प्रति शान्तिक किन्तु जोशपूर्ण सहानुभूति अभिव्यक्त की जाने लगी जिसने राजनीतिक सत्ता के लौह द्वार पर चेतावनी की दस्तक भी दी उसने युग चेतना को अपने अनुकूल सिद्ध करने का अथक श्रम किया।'[2] 'ब्रिटिश पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए भारत मे पहला स्वतत्रता सग्राम सन १८५७ ई० म हुआ। इस सशस्त्र स्वतत्रता सग्राम की असफलता और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रसार से ये सब न्यूनताए दूर होती गई एव समस्त भारत म एक राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।[3] सन १८८५ ई० म भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना हुई। इससे पूर्व अनेक राष्ट्रीय सस्थाओ की विद्यमानता इस बात का प्रमाण ह कि भारत म राष्ट्रीय जागरण काग्रेस के जन्म के पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था।[4]

सन १८९२ ई० का काउसिल एक्ट, सन १८९६ ९७ का अकाल दक्षिण अफ्रीका म भारतीयो के साथ दुर्व्यवहार लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति आदि के फल स्वरूप भारतीयो का असन्तोष बढने लगा।[5] सन १९०५ ई० म बगाल के विभाजन की घोषणा से विद्रोह की आधी चलने लगी जिसका साथ समस्त देश ने दिया। सन १९०७ के सूरत अधिवेशन म काग्रेस का गरम दल दल म अलग हो गया। सरकार ने मिण्टो मार्ले सुधार योजना द्वारा उदारवादियो को सतुष्ट करने का प्रयत्न किया और सन १९११ ई० म बगाल के विभाजन का अन्त कर दिया। १९१५ ई० म एनी बेसण्ट ने काग्रेस के दोनो पक्षो को मिलाने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहा। १९१६ ई० म तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना कर देश म स्वराज्य का आन्दोलन आरम्भ किया। "तब अग्रेजी सरकार का दमन चक्र आरम्भ हो गया। अग्रेजी सरकार की बर्बरता एव क्रूरता का सबसे बडा उदाहरण जलियावाला बाग का हत्याकाड है।'[6]

१ डा० हरिकृष्ण पुरोहित—आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृ० ३८१
२ डा० मोतीलाल मेनारिया—साहित्य के मान और मूल्य पृ० १८४
३ डा० परमलाल गुप्त—हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन पृ० ७
४ मन्मथनाथ गुप्त—राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास पृ० १३७ १५९
५ डा बी पट्टाभि सीतारामय्या—काग्रेस का इतिहास पृ० ६२ ६३
६ राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास पृ० २६५

२६ जनवरी १९३० ई० को भारत की जनता ने पूर्ण स्वतंत्रता का अपना अविभाज्य अधिकार घोषित किया।[1] अंत में १५ अगस्त, १९४७ को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सन १९६२ के चीनी आक्रमण तथा १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण के समय भारतीय राष्ट्रीय चेतना दिखलाई पड़ी। इस प्रकार भारत का राष्ट्रीय जागरण उसके उज्ज्वल भविष्य की महती भूमिका प्रस्तुत करता रहा है।

साहित्य मे राष्ट्रीयता का समावेश

हिंदी राष्ट्रीय साहित्य में नवजागरण का समावेश भारतेंदु युग से हुआ है। भारतेंदु क्रांतिकारी थे। भारतेंदु ने क्रांतिकारी चेतना के गीत गाये। यथा—

अरे वीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।
लेहु करन करवाल काढि रन रग समोए ॥[2]

भारतेंदु का समय भारतीय राष्ट्रीयता के जागरण का अरुणोदय काल था अतः राजनीतिक चेतना व्यापक नहीं हो सकी। हिंदी के साहित्यकार देश की दुर्दशा को देख नहीं सके। सरकार के प्रति रोष उत्पन्न करने वाले साहित्य का सृजन करने लगे। इनमें प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिश्चन्द्र आदि थे। इनके साहित्य में खिन्नता, निराशा, क्षोभ और अतीत की स्मृति थी। श्री सुमित्रानंदन पंत के साहित्य में साम्यवादी विचारधारा दृष्टिगत होती है—

साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान्
भव-जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण।

साम्यवादी विचारधारा के साथ ही क्रांतिकारी विचारधारा भी तत्कालीन साहित्य में प्रबल हो उठी। श्री माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने राष्ट्रीय आंदोलनों से अनुप्रेरित साहित्य की रचना की। प० बदरीनारायण उपाध्याय प्रेमघन तो राजनीति मे घुल मिल गये थे। प्रेमचन्द ने "अपने उपन्यासों में उठती हुई राष्ट्रीय शक्तियों, राष्ट्रीय आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय चेतनाओं का बराबर आभास दिया।" इसके अतिरिक्त 'राष्ट्रीय समस्या मूलक उपन्यासों मे प्रेमचन्द ने अपने देश की राजनैतिक, आर्थिक एवं साम्प्रदायिक समस्याओं के निराकरण के लिए किये जाने वाले जन आन्दोलनों को कथानक का आधार बनाया है।'[3] हिंदी साहित्य जगत को क्रान्तिकारी बनाने में प० नाथूराम शंकर शर्मा की समाज सुधार की दृष्टि, प० गयाप्रसाद 'सनेही' की कृषकों की दुर्दशा समझने वाली प्रतिभा तथा प० रामनरेश त्रिपाठी की स्वदेश भक्ति की दृष्टि ने अपना अमूल्य योगदान दिया। प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से क्रान्तिकारी स्वर उठाया। वे 'राम की शक्ति पूजा', 'दिल्ली', 'महाराज शिवाजी का पत्र' जैसी कविताओं में जहां अतीत के गौरव

१ कांग्रेस का इतिहास पृ० ३१४ ३१५
२ जितेन्द्रनाथ पाठक—कथाकार प्रेमचन्द और गोदान पृ० ८
३ डा० सुरेन्द्र शुक्ल—हिंदी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० ७१

शाली चित्र उपस्थित करते हैं, वही उनकी दृष्टि आज की पत्थर तोड़ती हुई मजदूरिन विधवा और भिक्षुक पर भी टिके बिना नहीं रहती। यदि वे 'जूही की कली' जैसी श्रृंगारिक रचना करते थे तो वे ही 'जागो फिर एक बार' का उद्घोष भी कर सकते थे।[1]

श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा १९१३ में 'भारत भारती' का प्रकाशन हुआ, जिसमें अतीत और वर्तमान का मार्मिक चित्रण मिलता है। 'साकेत' महाकाव्य में सत्याग्रह, अहिंसा, किसानों और मजदूरों के प्रति प्रेम का स्वर मिलता है। श्री वियोगी हरि ने 'असहयोग वीणा', 'चरखे की गूंज' 'चरखा स्तोत्र' आदि रचनाएं राजनीतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर कीं। यथा—

"या तेरी तरवार में नहिं कायर अब आब।
दिल हू तेरो बुझि गयो वामें नेक न ताव ।।"

श्री दुलारेलाल भार्गव ने भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर दोहे लिखे—

"गांधी गुरु तें ग्यो न लै चरखा अनहद जो—
भारत सबद तरंग पै बहन मुकति की ओर।"

पं० रामनरेश त्रिपाठी के पत्र प्रबन्धकाव्य 'मिलन' 'पथिक', 'स्वप्न' आदि में राष्ट्रीय भावना मिलती है। उन्होंने लोक सेवा में ही जीवन की सफलता मानी है—

"सेवा है महिमा मनुष्य की न कि अति उच्च विचार द्रव्य-बल।
मूल हेतु रवि के गौरव का है प्रकाश ही, न कि उच्च स्थल।

पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' में देश भावना का मार्मिक चित्रण मिलता है। जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' के काव्य में देश मुक्ति के लिए युद्ध को अनिवार्य माना गया है—

यदि देश धर्म के विरुद्ध भगवान भी
आए तो है धर्म उत्तम भी युद्ध करना।

लेकिन आधुनिक युग में ऐसे क्रान्तिकारी कवियों के प्रतिनिधि के रूप में हम दिनकर को देखते हैं। वस्तुतः अपनी इसी अतीत और वर्तमान काव्य भूमि पर हमारे आलोच्य कवि 'दिनकर' का उदय हुआ। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दिनकर से पूर्व राष्ट्रीय काव्य में रचना के माध्यम से क्रान्तिमत चेतना का पूर्णोदय हो चुका था। उसी का प्रसार दिनकरजी की कृतियों में परिलक्षित होता है।

दिनकर के राजनीतिक आदर्श

दिनकर की राष्ट्रीयता के तीन रूप हैं—

(क) अतीत का गौरव गान
(ख) वर्तमान की करुण स्थिति का अंकन
(ग) आतंकवाद का सहारा

'समकालीन राष्ट्रीय कविताओं से प्रभावित होने के साथ साथ दिनकर को

1 सावित्री त्रिपाठी प्रवासी—दिनकर के काव्य पृ० ७

तत्कालीन जन जागृति की भावनाओं से भी राष्ट्रीय विचारधारा और क्रांतिपरक कविताएं लिखने की प्रेरणा मिली।"[1] "चक्रवाल की भूमिका में दिनकर ने स्पष्ट किया है कि वे बचपन से ही तुलसीकृत रामायण के पठन में तो रुचि और श्रद्धा रखते थे किन्तु तुलसीदास बनने की इच्छा उनके मन में कभी उत्पन्न नहीं हुई।'[2] दिनकरजी को राष्ट्र विरोधी कार्यों के न करने पर ही १९४५ ४६ को सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने का प्रयास करना पड़ा। दिनकरजी की ग्लानि यहां दिखती है—

> मुझ से तो न सहा जायगा, अब असीम यह कोलाहल,
> जी न सकूगा पक्व झेल, अब पी न सकूगा ग्लानि गरल।'[3]

दिनकर जी राष्ट्रवाद के दुष्परिणामों को भी समझ गये। इन दुष्परिणामों तथा संकीर्णता के कारण ही राष्ट्र युद्ध की ज्वाला में सुलगता रहेगा। उनका मत था कि जब तक मानव में परस्पर वैमनस्य समाप्त न होगा वास्तविक मानवता का जन्म नहीं हो सकता—

> 'और आपको विदित नहीं क्या, राष्ट्रवाद यह कैसे
> विश्व मनुज को जन्म ग्रहण करने से रोक रहा है ?
> कारण ? राष्ट्रवाद उपयोगी भाव, निरी पशुता है।
> विश्व पुरुष पाशविक धरातल पर कब जनमेगी।'[4]

दिनकरजी ने यत्र तत्र दीन-हीन जनता को देखा। उनका कवि हृदय विह्वल हो उठा। तब कवि के मन में राष्ट्रीय भावना जागत हुई। चक्रवाल की भूमिका में कवि ने स्वीकार भी किया है—कि 'कवि होने की सामर्थ्य शायद मुझ में नहीं थी। यह क्षमता मुझ में भारतवर्ष का ध्यान करने से जागत हुई। यह शक्ति मुझ में भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात् करने से स्फुरित हुई।'[5] 'मेरे पीछे और मेरे चारों ओर भारतीय मानवता खड़ी थी जो पराधीनता के पाश से छूटने को बेचन थी।[6] डा० सावित्री सिन्हा का मत है कि—"दिनकरजी की सृजनात्मक प्रक्रिया का प्रेरणास्रोत उनका क्रोध है।"[7]

पराधीन राष्ट्र के लिए अतीत की उदात्त कल्पना आवश्यक है। अतीत से वर्तमान को शिक्षा लेनी चाहिए। प्रताप शिवा लक्ष्मीबाई के त्याग हमारे वर्तमान को तीव्रता प्रदान करते हैं। शंकर के ताण्डव नृत्य से संहार लीला का दृश्य प्रकट होता है तो दुर्गा द्वारा दुष्टों के दलन की कथा निर्भीकता प्रदान करती है। दिनकर

१ धूप-छाँह पृ० ३
२ चक्रवाल—भूमिका पृ० २५
३ मति तिलक पृ० १६ १७
४ कोयला और कवित्व पृ० ७७
५ चक्रवाल—भूमिका पृ० ३४
६ वही पृ० १४
७ डा० सावित्री सिन्हा—कवि दिनकर व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० ५१

के का य म अतीत को वाणी मिली है। इतिहास साकार होकर हमारे सामन अव तरित हुआ है। खण्डहरा के हृदय को प्रतिध्वनित और अनुप्राणित करन वाले हिन्दी साहित्य म ऐस कितन कवि हैं। दिनकर की अतीत भावना कही भगवान बुद्ध की दिव्य आत्मा स आलोकित है, कही मौय और गुप्त के भव्य ऐश्वय स मुखरित है, कही मुगल कला विलास स विकसित ह और कही राजपूती शान और शौय स उदघोषित है।[१] रेणुका की हिमालय कविता म एतिहासिक आख्याना, महापुरुषो और वीर बालाओ की वीरता स प्रेरणा लेने का आह्वान किया गया ह। साथ ही ताण्डव का हाहाकार भी सुनाई देता है—

"घहरें प्रलय-पयोद गगन म,
अध धूम हो व्याप्त भुवन म,
बरसे आग वहे मलयानिल
मचे त्राहि जग के आंगन म
फटे अतल पाताल, धस जग, उछल उछल कूदें भूहार
नाचो हे नाचो नटवर।"[२]

कविवर इस धरती के इतिहास का गौरव गान करत हुए गौतम तथा चन्द्रगुप्त का स्मरण दिलाते हैं—

"पग पग पर सनिक सोता, पग पग पर सोते वीर
कदम कदम पर यहा बिछा है ज्ञानपीठ गभीर।'[३]
कहते है या चन्द्रगुप्त की मगध सिंधुपति सा हहराया।'[४]

दिनकरजी का अभिमत है कि हमारे पूवज मजबूरी मे शक्ति का प्रयोग करते थे।

"आग के साथ आग बन मिलो और बन पानी स पानी,
गरल का उत्तर है प्रतिगरल यही कहते जग के ज्ञानी।'[५]

उन्होने अशत इतिहास को काव्य म ध्वनित करन की चेष्टा की, वतमान की चित्रपटी पर अतीत को सम्भाव्य बनाया।[६] कवि केवल अतीत के ही गुण गाने वाला नही है अपितु वह वतमान का द्रष्टा है। उसने मानवता के गीत गाये है। यथा—

'उसकी इच्छा थी, उठा गूज गजन गभीर
मैं धूमकेतु सा उगा तिमिर का हृदय चीर।
मत्तिका तिलक लकर प्रभु का आदेश मान,
मैंने अम्बर को छोड धरा का किया गान।"[७]

१ प्रो० शिवबालकराय—दिनकर पृ० २६
२ रेणुका पृ० २
३ इतिहास के आसू ११
४ वही पृ० १४
५ वही पृ० ६६
६ श्री सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर पृ० ४७
७ सामधेनी, पृ० ५६

कवि केवल अतीत गौरव के गीत ही नहा गा सका । उसके सामने पराधीन तथा पीडित जनता का रुग्ण रूप था। कवि हृदय जनता के अधिकारो पर लगे प्रतिब ध से देखकर व्याकुल था। उसी विवशता को कवि लेखनीवद्ध करते हुए कहते हैं—

जहाँ बोलना पाप, वहाँ क्या गीता म समझाऊं मैं। [1]

इस वातावरण की विडम्बना कवि सह नही सके उन्होने त्रिटिश दमन नीति का चुनौती दी—

वतमान की जय अभीत हो खुलकर मन की पीर बजे
एक राग मेरा भी रण मे बन्दी की जजीर बने।
नई किरण की सखी, बाँसुरी के छिद्रो स लूक उठे,
सास सास पर खडग धार पर नाच हृदय की हूक उठे।' [2]

अपन अधिकारो को छिनता देख कवि क्रान्ति का आह्वान करत ह—

नये प्रभात क अरुण ! तिमिर उर म मरीचि सधान करो
युग के मूक शैल ! उठ जागो, हुकारो, कुछ मान करो।
टाक रही हो सुई चम पर शात रह हम तनिक न डोलें
यही शाति गरदन कटती हो पर हम अपनी जीभ न खोलें।
शोणित से रग रही शुभ्र पट सस्कृति निठुर लिए करवालें
जला रही निज सिंह पौर पर, दलित दीन की अस्थि मशालें।" [3]

अतीत के महान् व्यक्तियो स भी कवि प्रेरणा लने की बात कहता है—

टेरो, टेरो चाणक्य चन्द्रगुप्तो को
विक्रमी तज असि की उद्दाम प्रभा को
राणा प्रताप गोविन्द शिवा को। [4]

अतीत के गौरव को कवि वतमान की उत्तेजना और जागरण के लिए माध्यम समझता है। और वह क्राति के स्वर मे कहता है—

उठ भूषण की भाव रगिणी।
लनिन के दिल की चिनगारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला।
जाग-जाग री क्राति-कुमारी।" [5]

कवि की धारणा है कि देश की मिट्टी को भी नवीन क्राति की दिशा मिल रही है —

'छिलके उठते जा रहे नया
अकुर मुख दिखलान को है,

१ हुकार—प्रामुख, प० १
२ वही प २
३ वही पृ० २३
४ परशुराम की प्रतीक्षा प० ६
५ रेणुका पृ ३३

यह जीर्ण तनोवा सिमट रहा
आकाश नया आने को है।"[1]

वर्तमान की दुर्दशा से बार बार कवि हृदय शात्राकुल हो जाता है—

"दवि ! दुखद है वर्तमान की यह असीम पीडा सहना,
कहीं सुखद इससे सस्मृत म, अतीत की रत रहना।[2]

अन्तत वह भारतीय जनता को नई चेतना से अभिभूत करता है—

'गत विभूति भावी की आशा, ले युग धर्म पुकार उठे।
सिंहो की घन अंध गुहा म जागति की हुंकार उठे।'[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिनकरजी के राजनीतिक आदर्श दलीय प्रति बद्धताओं से मुक्त, राष्ट्रवादी और क्रान्तिमत चेतना से अनुबद्ध हैं। उनके रचनादर्श युग समाज सापेक्ष होने के कारण सार्वकालिक भी है।

राजनैतिक क्रान्ति की दृष्टि से वैचारिकता के स्तर

(क) साम्यवादी विचारधारा का समर्थन
(ख) उग्र राष्ट्रवादिता का समर्थन
(ग) साम्राज्यवाद का विरोध
  (१) क्रूर शासकों का विरोध
  (२) सामन्तशाही का विरोध
(घ) गाधी के अहिंसावाद का खडन

साम्यवादी विचारधारा का समर्थन

साम्यवाद ही एक ऐसी विचार व्यवस्था है जिसने इस मानव स्वभाव मे व्यापक परिवर्तन के लिए व्यक्ति और समूह के सभी द्वन्द्वों की समाप्ति के लिए व्यापक कार्य किये हैं।[4] प्रो० जोड का मत है कि कभी कभी साम्यवाद को समाजवाद का समानार्थवाची भी माना जाता है। पर तु समानार्थवाची मानना उचित नही। साम्यवाद समाजवाद से अगली मंजिल है। जिसकी उपलब्धि के निमित्त हिंसात्मक क्रांति को ही सबसे उपयोगी विधि माना जाने लगा है।"[5] सैनेस के अनुसार—' यह एक लोकतन्त्री आन्दोलन है जिसका उद्देश्य समाज का एक ऐसा आर्थिक सगठन निर्मित करना है जो किसी एक समय मे अधिक से अधिक न्याय तथा स्वतन्त्रता प्रदान कर सके।

१ सामधेनी पृ० २४
२ रेणुका पृ० २७
३ वही पृ० २७
४ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—जलते और उबलते प्रश्न पृ २२४
५ डा० गगादत्त तिवारी—आधुनिक राजनीतिक चिन्तन का इतिहास पृ० २६५

दिनकर राष्टीय कवि है अत उनम सस्कृति राष्ट्रीयता, स्वधम श्रेष्ठता की भावना कूट कूट कर भरी है किन्तु आजकल विद्वान समाजवाद को भी साम्यवाद से मिलाने लगे हैं और मावस के सिद्धात के अनुसार उसकी परिभाषा एव लक्षणो का प्रतिपादन करने लगे है। ' दिनकर के काव्य म साम्यवादी चिन्तन की प्रखर अभिव्यक्ति हुई ह। व कहते ह—

जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नही सम होगा ।
शमित न होगा कोलाहल सघष नही कम होगा।'[2]

वे मानत है कि समाज म वग भेद ही सघष का मूलभूत कारण है—

वट की विशालता के नीचे जो अनेक वक्ष,
ठिठुर रहे है, उन्ह फैलने का वर दो।
रस सोखता है जो यही का भीमकाय वक्ष,
उसकी शिराए तोडो डालिया कतर दो ।"[3]

वतमान समाज की विषमता के कारण कवि खिन्न होकर कहता है—

' चमकी किसी की बूट पर पालिश किसी के खन की ।' [4]

तथा—

आज दीनता को प्रभु की पूजा का भी अधिकार नही
देव ! बना था क्या दुखियो के लिए निठुर ससार नही,
धन पिशाच की विजय धम की पावन ज्योति अदृश्य हुई ।' [5]

कवि इस प्रकार के समाज म क्रान्ति की आग प्रज्ज्वलित करना चाहते हैं। साम्यवाद के लिए क्रांति की आग अपक्षित है—

"गिरे, विभव का दप चूण हो लगे आग इस आडम्बर मे,
वैभव के उच्चाभिमान म, अहकार के उच्च शिखर म,
स्वामिन ! अधड आग बुला दो ।"[6]

ऐस समाज म क्रान्तिकारी आन्दोलन का होना अवश्यम्भावी है। जहा—

' मालिक जब तेल फुलेलो पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं। [7]

कार्ल मावस का अभिमत है कि— पूजीवाद अपने नाश के बीज स्वय बोता है।'[8]
कवि की मान्यता है कि—

१ दिनकर की काव्य भाषा पृ० १ ३
२ कुरुक्षेत्र प० ८७
३ वही पृ ८६
४ हुंकार पृ० ८१
५ रेणुका पृ १८
६ वही पृ० ३
७ हुंकार प० ७३
८ Capitalism breeds its own seeds of distruction ' Karl Marx"

वभव की मुस्कानो म छिपी प्रलय की रखा।'[1]

साम्यवादी समानता पर आधारित समाज व्यवस्था का स्वागत करत हुए कवि कहता है कि—

आज कम्पित क्यो मून ससार का अथ का दानव भयाकुल मौन है,

चौपडी हँस चौकती वह जा रहा, साम्य का वशी बजाता कौन है।'[2]

साम्यवाद के सबध म सर्वोदयी विचारक श्री जयप्रकाश नारायण का अभिमत है कि समाजवाद का केवल एक रूप है, एक सिद्धान्त है और वह मार्क्सवाद है।'[3] साम्यवाद लान क लिए कवि श्रम की महत्ता पर बल देता है—

'श्रम होता सबसे अमूल्य धन सब जन खूब कमाने।[4]

साम्यवाद आन स कवि दृष्टि म पृथ्वी पर स्वग की कल्पना साकार हो सकती है—

'सब हो मक्त तुष्ट एक सा सब सुख पा सकते हैं,

चाहे तो पल मे धरती को स्वग बना सकते है।[5]

काल मार्क्स की क्रांति हिंसात्मक है इसलिए कवि 'नाश देवता' की वन्दना करता है और मानता है कि विना सहार' के सजन असम्भव है।[6] इस क्रांति के लिए दिनकरजी ने पहल पराधीनता को नष्ट करने का आह्वान किया है—

यह जो उठी शौय की ज्वाला, यह जो खिला प्रकाश,

यह जा खडी हुई मानवता, रचने को इतिहास

सो क्या था विस्फोट अनगल ? बाल कुतूहल नर प्रमाद था ?

निष्पेपित मानवता का यह क्या न भयकर तूय नाद था ?

इस उद्वलित बीच प्रलय का था पूरित उल्लास नही क्या ?

लाल भवानी पहुच गई है भरत भूमि के पास नही क्या ?[7]

दिनकर जी का मत था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति किए बिना साम्यवादी समाज की रचना नही हो सकती।[8] शोषकवग तथा शासकवग ने मिलकर ऐस वातावरण को बना दिया जिसस बलिदानियो का श्रम व्यथ होता जाता है। कवि उस वग का चुनौती देते हुए कहते हैं—

कहो मार्क्स स डरे हुओ का, गाधी चौकीदार नही है

सर्वोदय का दूत किसी, सचय का पहरदार नही है।"[9]

१ इतिहास के आसू प० ६८
२ हुकार प० ७८
३ जयप्रकाश नारायण—समाजवाद सर्वोदय और लोकतन्त्र प० ६
४ कुरुक्षेत्र (१४वां सस्करण) प० १३५
५ वही प० १३१
६ जगदीश कुमार—नया कविता की चेतना प० ७६
७ सामधेनी पृ० ६३
८ आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, पृ० २३
९ नीलकुसुम, प० ७७

साम्य धर्म के लिए कवि ने लाल क्रांति को अवश्यम्भावी माना है। यथा—

हा भारत की लाल भवानी
जवा कुसुम के हारा वाली
शिवा रक्त राहित-वसना
कवरी म लाल किनारा वाली।[1]

सच तो यह है कि—'यह क्रांतिचेता कलाकार अपना कर्त्तव्य समझता है कि वर्ग सघर्ष म सर्वहारा वर्ग का साथ दे। देश प्रेम, ससार की जनता का भाईचारा भविष्य के प्रति दृढ आस्था आशा एव उल्लास—य विशेषताए उनकी है जो नया समाज रचने का सकल्प कर चुके ह।[2] क्रांति और प्रगति के कवि की आस्था समाजवादी या साम्यवादी विचारो पर होना स्वाभाविक ही है।[3] दिनकर की साम्यवादी चिंतन की मूलभूत अवधारणाओ का प्रभाव उनके कृतित्व म कही भी खोजा जा सकता है।

उग्र राष्ट्रवादिता का स्वर

'दिनकर उग्र राष्ट्रीयता के पक्षपाती थे तथा भारतीयता के वह कट्टर समर्थक होने के कारण ही उनके विचार भी उग्र थ क्योकि उनका परिवेश तथा उस समय देश का परिवेश सत्य-अहिंसा के सिद्धातो पर चलन का न था। फलत उग्र विचारो के कारण लोगो की दृष्टि म थ समाजवादी और साम्यवादी परिलक्षित हुए जबकि ऐसा सत्य नहीं था। डा० नगेन्द्र अपनी समन्वित दृष्टि एव प्रवृत्ति के कारण इस सत्य को पहचान जाते हैं तभी तो व ऐसा विचार प्रस्तुत करत है कि दिनकर समाजवाद को उदारता स अपनाते हैं जो भारतीयता का प्रतीक है।'[4] उन्होन कुरुक्षेत्र मे स्पष्ट शब्दो म कहा है कि—

'जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नही सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल सघर्ष नहा कम होगा।[5]

उपयुक्त पक्तियो म दिनकर ने पूजीपति तथा श्रमिक दोनों को साम्य के लिए प्रेरित करन वाली उग्र विचारधारा अपनाई है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय जनता के विकट सघात स उदवलित दिनकर की का त चेता अग्नि की चिनगारियो स अपने स्वप्न सजान को आगे बढी। वह स्वप्न जिसम सिधु का गजन और प्रलय की हुकार थी जहा बधा तूफान रास्ता पाने के लिए विकल था जहा मौन हाहाकार विश्व को हिला देने क लिए व्यग्र था।[6] इसीलिए उनकी काव्यकृतियो म दीना-हीनो के

१ सामधनी पृ० ७१
२ डा रामविलास शर्मा—स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य पृ ३
३ युग कवि दिनकर पृ ५०
४ डा सावरचन्द्र जैन—राष्ट्रकवि दिनकर और उनका काव्य कला, पृ० २ ८
५ कुरुक्षेत्र पृ ८७
६ युगचारण दिनकर पृ० ८८

हाहाकार का स्वर अत्यन्त आक्रोशपूर्ण है—

सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेत में धर कर हल।'[1]

× × ×

धन पिशाच के कृषक-मेध में नाच रही पशुता मतवाली,
आगन्तुक पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली।'[2]

समाज की इस विषम स्थिति को देखकर ही दिनकर का उग्र रूप प्रगट होता है। वे कहते हैं—

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्ग धीर।
पर फिर हमें गाण्डीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।'[3]

उनकी बद्धमूल धारणा थी कि मुक्ति तभी मिलेगी जब हम अग्नि में स्नान करेंगे—

खेल मरण का खेल, मुक्ति की यह पहली बाजी है।
सिर पर उठा वज्र आंखों पर ले हरि का अभिशाप
अग्नि स्नान के बिना धुलेगा नहीं राष्ट्र का पाप।[4]

जनता की अत्यन्त शोचनीय दशा देखकर कवि हृदय करुणा प्लावित होने के स्थान पर रौद्र रूप धारण कर लेता है—

'दिव-दाह देखना किसी काल मेरा न ध्येय,
अपराक वहाँ लेना न चाहता मधा श्रेय
वंशी पर मैं फूंकता हृदय की करुण हूक,
जाने क्यों ज्वाला सा उठती है लपट मूक।[5]

उनकी क्रान्तिमत चेतना का उग्र रूप अन्यत्र भी देखने को मिलता है—

मेरा शिखण्ड अरुणाभ, किरीट अनल का,
उदयाचल पर आलोक शरासन तान,
आभा में उज्ज्वल गीत विभा के गाने,
आलोक विशिख से बोध जगा जन-जन को,
सजता हूं नूतन शिखा जला जीवन को।'[6]

दिनकरजी मुक्ति का मार्ग ढूंढने के लिए उद्दाम क्रान्ति का पथ सन्धान करना चाहते थे—

जा रहा बीतता हवन-लग्न करवटें चुका ले शेष व्याल,
मेरे मानस के इष्टदेव आओ खोले निज जटा जाल,

१ रेणुका पृ० १५
२ वही पृ० ३३
३ हुंकार पृ० २६
४ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ४२
५ हुंकार पृ० ९३
६ वही, पृ० १४

है साथ चुके ये निस्व और द् दहन मुक्ति की राह एक।
बल उठे किसी दिन वह्नि राशि ले देकर मरी चाह एक। '[1]

दिनकर के काव्य में धीर काव्य जैसी उग्रता वहीं भी देखी जा सकती है। यथा—

' हिल रहा धरा का शीर्ष मूल,
जल रहा दीप्त सारा खगोल।
तू सोच रहा क्या अचल मौन ?
जो द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल,
जब रहे सफल प्राचीर काँप
तब तू भीतर क्या साच रहा
है वनीव धम का पष्ठ खोल। '[2]

साम्राज्यवाद का विरोध

मनुष्य समाज में रहने के कारण ही एक राजनीतिक प्राणी है। वह स्वयं अपने शासक को चुनता है। वह राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहता है। कभी शासन की कुव्यवस्था से रुष्ट होकर उसे बदलना चाहता है। 'यदि शासक स्वयं बदलना नहीं चाहता हो या वह दमन, दण्ड आदि हिंसात्मक प्रवृत्तियों को अपनाता हो तो मनुष्य उससे अपनी रक्षा के लिए क्रांति का मार्ग अपनाता है।'[3] यदि कोई देश अन्य देश को जीत लेता है और वहाँ की जनता पर अपना शासन चलाता है तो उस देश को साम्राज्यवादी देश तथा उस प्रक्रिया को साम्राज्यवाद कहा जाता है।'[4] साम्राज्यवाद एक घृणित वाद है। शक्तिशाली शासन सत्ता निर्बल जनता का खून चूसती है। दिनकर का कवि व्यक्तित्व परतन्त्र भारत में विकसित हुआ था। सभी क्षेत्रों में भारतीय जनता परतंत्रता के पाश में जकड़ी हुई थी। कवि ने ऐसे राष्ट्र से क्षुब्ध हो साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्ति का आह्वान किया। ऐसे वातावरण में राष्ट्रीय एकता के अभाव में जनतंत्र तो क्या कोई भी शासन पद्धति नहीं टिक सकती।'[5] अतः कवि शासक के विरुद्ध क्रांति की प्रेरणा देता है। वह साम्राज्यवाद का घोर विरोधी बनकर प्रस्तुत होता है—साम्राज्यवाद का विरोध कवि ने निम्न लिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया है—

(१) क्रूर शासकों का विरोध
(२) सामन्तशाही का विरोध

१ हुंकार पृ० १९
२ धा द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल पृ १६४ की रचना
३ डॉ पा० प्राग्निवरराव—तुलनात्मक शोध और समीक्षा पृ ८५
४ डा पी आदेश्वरराव—दिनकर वचारिक क्रांति के परिवेश मे पृ ४६
५ डा सुभाष कश्यप—भारतीय राजनीति और राजनीतिक दल समस्याएं और समाधान, पृ० २६

परतन्त्र देश म मानवता दव जाती है। शोषण की वेदना स सन्त्रास्त की पुकार को कवि ने इन शब्दो म अभिव्यक्ति दी है—

"युगो स हम अनय का भार ढोते आ रहे हैं,
न बोली तू मगर, हम रोज मिटते जा रहे है
पिलाने को रक्त कहाँ से लायें दानवो को ?
नही क्या स्वत्व है प्रतिशोध का हम मानवो को। [1]

साम्राज्यवाद को नष्ट करने के लिए कवि जनता को अतीत का स्मरण दिलाता है—

"मत खेलो या बेखबरी म
जन समुद्र यह नही मि धु है यह अमोघ ज्वाला का,
जिसम पड कर बडे बडे कगूरे पिघल चुके हैं।
लील चुका है यह समुद्र जान कितने देशो मे
राजाओ के मुकुट और सपने नेताओ के भी,
सावधान ! जन्मभूमि किसी का चरागाह नही है,
घास यहाँ की पहुच पेट मे काँटा बन जाता है। [2]

दिनकरजी भारतवासी को किसी का दास नही बनाना चाहते—

'नही चाहते किसी देश को हम निज दास बनाना
पर स्वदेश का एक मनुज भी दास न कहीं रहेगा,
हम चाहते सधि पर विग्रह कोई खडग करे तो,
उत्तर देगा उसे मगध का महा खडग बलशाली।" [3]

कुरुक्षेत्र' म साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रांति का स्वर बहुत स्पष्ट है। भीष्म कहते हैं—

'धमराज ! यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी।' [4]

कवि का मत है कि राजतन्त्र प्रजा का न्याय म वचित करता है। जब तक मनुष्यो को न्याय सुलभ नही होता तो विश्व म कभी भी सच्ची शक्ति स्थापित नही हो सकती—

"न्यायोचित सुख सुलभ नही जब तक मानव मानव का।
चन वहाँ धरती पर, तब तक शान्ति कहाँ इस भव का।" [5]

कवि का कहना है कि भोगवाद ही सब विषमताओ की जननी है। वही विष की धारा आज समाज म बह रही है। [6] कवि का अभिमत है कि राजा और प्रजा का सम्बन्ध स्वार्थी व्यक्तियो ने ही गढा है। नहीं तो पहले यहाँ न काइ राजा था न प्रजा—

१ हुकार—दिगम्बरी पृ० २३
२ नीम के पत्ते पृ० ५
३ इतिहास के आंसू पृ १८
४ कुरुक्षेत्र पृ० ५१
५ वही पृ १४१
६ वही पृ० १४१

'कौन यहाँ राजा किसका है किसकी कौन प्रजा है।
नर ने होकर भ्रमित स्वय ही वह बधन सिरजा है।'[1]

इसका परिणाम यह हुआ कि निबल मनुष्य पर दण्डनीति के आधार पर राजा शासन करने लगा—

'और खड्ग धर पुरुष विक्रमी शासक बना मनुज का,
दण्ड नीति सारी त्रास के नर-तन मे छिपे मनुज का।'[2]

और अपने को सुखी बनाने के लिए व्यष्टि समष्टि को छोड स्वय दासता के गर्त मे चली गई—

"तज समष्टि का व्यष्टि चली थी जिसको सुखी बनाने
गिरी गहन दासत्व गर्त मे बीज स्वय अनजाने।[3]

कवि साम्राज्यवाद से घृणा करते हुए कहता है कि धन लोलुप व्यक्तियो ने खड्ग के आधार पर असहाय तथा निरीह जनता के धन को छीनकर उन्हे मौलिक अधिकारो से वचित कर दिया है।

हाय रे! धनलुब्ध जीव कठोर।
हाय रे! दारुण मुकुट धर भूप लोलुप चोर
साज कर इतना बडा सामान
स्वत्व निज सबका अपना मान,
खड्ग-बल का ले भयद आधार
छिनता फिरता मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार।[4]

शासक युद्ध केवल अपने स्वार्थ के लिए करना चाहता है जिससे उनके राज्य की सीमा का विस्तार हो और वे अधिक से अधिक धन अर्जित कर सकें।[5]

सच तो यह है कि दीन हीन जनता पर युद्ध प्रलय का भार लादते है—

भौं उठा पाये न तेरे सामने बलहीन,
इसलिए ही तो प्रलय यह हाय रे हिय हीन।'[6]

क्रूर शासक युद्ध केवल इसलिए करता है कि उसकी सत्ता का सभी उसके अनुशासन मे रहे। शासक का अभिमान बढता जाय और वह प्रजा पर अपनी पूरी धाक जमा ले।[7]

इस प्रकार क्रूर शासको का ऐश्वर्यमय जीवन कब तक चल सकता है? जनता मे क्रांति के बीज अकुरित होने लगते है और क्रांति के स्वर मुखरित हो उठते है—

१ कुरुक्षेत्र पृ ५५
२ वही पृ १४१
३ वही पृ १४१
४ इतिहास के आंसू पृ ४४ ४५
५ रश्मिरथी पृ० २
६ सामधेनी पृ ४५
७ रश्मिरथी पृ १२

रस्सा स बस अनाथ पाप प्रतिकार न जब कर पात है,
बहना की लुटती लाज देखकर काप काप रह जाते हैं,
शस्त्रो के भय स सब निरस्त्र आँसू भी नही बहाते हैं
पी अपमाना के गरल घूट शासित जब होठ चबात हैं,
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण ज"म लगना।'[1]

सत्ताधारी अनीति पद्धति अपनाते हुए अन्यायी तथा अविचारी समाज के सूत्रधार बनत हैं जहा खड्ग ही मात्र शासन का आधार बन जाती है जनता का हृदय भभक उठता है वहाँ ऊपर से शाति दिखाई देने पर भी उसके धरातल मे क्रान्ति की अग्नि सुलगती रहती है—

"जहा पालत हा अनीति पद्धति को सत्ताधारी
जहाँ सूत्रधार हा समाज के अन्यायी अविचारी
जहा खड्ग बन एक मात्र आधार बने शासन का,
दबे नाद्य से भभक रहा हो हृदय जहाँ जन, जन का
सहते सहते अनय जहाँ मर रहा मनुज का मन हो।
समय का पुरुष अपने का धिक्कार रहा जन जन हो
अहकार के साथ घणा का जहाँ द्वद्व हो जारी,
ऊपर शाति तलातल म हो छिटक रही चिनगारी।'[2]

इस क्रान्ति को अन्यायी शासक रोक नही सकता। जन चेतना के महाप्रवाह के साथ-साथ क्रान्ति की आग भी फलती जाती है। काल भी उसे नही रोक पाता है—

'हुकारा स महलो की नीव उखड जाती,
साँसा के बल स ताज हवा म उडता है
जनता की रोके राह समय म ताब कहा?
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुडता है।'[3]

अस्तु राजतत्र हेय ह। वस्तुत नर समाज का तो ऐसे खड्गधारी राजा की आवश्यकता है जा अत्याचारों का हनन कर सके—

'नर ! निश्चित अत नरपति चाहिए धर्म ध्वज धारी
राजतत्र है हेय इसी मे राजधर्म है भारी,
नर समाज को एक खड्गधर नपति चाहिए भारी
डरा करें जिससे मनुष्य अत्याचारी, अविचारी।'[4]

यही प्रेरणा अन्तत मानव-समुदाय को युद्ध के लिए ललकारती है—

१ हुकार पृ० ७३
२ कुरुक्षेत्र से उद्धृत
३ धूप और धुआँ पृ० ७
४ कुरुक्षेत्र पृ० ४०४८

'मिट जाए समस्त महीतल क्योंकि,
किसी ने किया अपमान किसी का,
सब जगती जल जाए कि फूट रहा है
किसी पर दाहक बाण किसी का
सबके अभिमान उठ चल क्योंकि
लगा चलने अभिमान किसी का
नर हो बलि के पशु दौड पड़े,
कि उठा जब युद्ध विषाण किसी का। [1]

मनुष्यों मे विकारो की लपटें एक दूसरे स मिल भभक कर जलती हैं। पहले व्यक्ति का स्वार्थी अन्तमन तप्त होता है उससे अग्नि पाकर जन समुदाय म युद्ध की लपटें फलने लगती है—

'नरो मे भी विकारो की शिखाएँ आग सी
एक से मिल एक जलती है प्रचण्डावेग से
तप्त होता क्षुद्र अन्तर्योम पहल व्यक्ति का
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी
क्षोभ से दाहक घृणा स गरल ईर्ष्या द्वेष स। [2]

कवि की यह बद्धमूल धारणा है कि दरिद्र जनता का धनिकों द्वारा शोषण आज ससार म सबत्र दिखाई देता है—

'विद्युत की इस चकाचौंध मे देख दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय को थाम महल के लिए झोपडी बली होती है।' [3]

पूँजीपतियों की विलासिता एव आर्थिक शोषण वत्ति का चित्रण कवि ने निर्द्वन्द्व भाव से किया है—

व भी यही दूध से जो अपन स्वानो को नहलाते हैं
ये बच्चे भी यही कब्र म दूध दूध जो चिल्लाते हैं। [4]

मनुष्य मनुष्य की दासता स मुक्त होकर स्वतंत्र रहना चाहिए। स्वतन्त्रता की परिभाषा कवि ने यो की ह—

रोटी उसकी जिसका अनाज जिसकी जमीन जिसका श्रम है
आजादी है अधिकार परिश्रम का पुनीत फल पाने का। [5]

२६ जनवरी १९५० को दिनकरजी ने 'जनतंत्र का जन्म नामक कविता लिखी थी। इसम कवि राजतंत्रीय सत्ताधारियों स गद्दी खाली करने को कहता है—

१ कुरुक्षेत्र पृ १४
२ वही पृ १७
३ रेणुका पृ ३१
४ हुंकार पृ २१
५ नीम के पत्त पृ ५

'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'[1]

परशुराम की प्रतीक्षा' में कवि ने राजनीतिक सत्ताधारियों के भ्रष्टाचारों तथा आन्तरिक कुव्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है—

'घातक है जो देवता सदृश दिखता है,
लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा है
समझो उसने ही हमें यहाँ मारा है।'[2]

पूँजीवाद और उसकी संतति साम्राज्यवाद के प्रति कवि की वाणी अग्निबाण बन गई।[3] साम्राज्यवाद की लोलुपता के प्रतिशोध का अधिकार जनता इतिहास से माँगता है।[6]

यूरोपीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध जगते हुए एशिया के दशा की अकुलाहट को कवि ने इन शब्दों में उजागर किया है—

"पूर्व की छाती फटी किस रोष से
रश्मियाँ एशिया के प्रात की ?"[4]

अत्याचारी शासक के विस्फारित नयनों में कवि ने आर्य जाति का एक नया रूप देखा है—

"कलेजा मौत ने जब-जब टटोला इम्तिहाँ में,
जमाने को तरुण की टोलियाँ ललकार बोली।
पुरातन और नूतन वज्र का संघर्ष बोला,
विभा सा कौंध कर भू का नया आदेश बोला।
नवागम शेष से जागी बुझी ठंडी चिता भी,
नई शृंगी उठा कर वृद्ध भारतवर्ष बोला।
दरारें हो गईं प्राचीर में बंदी भवन के,
हिमालय की दरी का सिंह भीमाकार बोला।[5]

जन जीवन दासता की शृंखला में बद्ध था। क्रूर साम्राज्यवादी शासकों द्वारा संत्रस्त जनता मानो एक बंदीगृह में जीवन बिता रही थी। उसका जीवन एक पक्षी से भी अधिक दुरूह हो गया था। इस व्यथा कथा को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

चारों दिशि ज्वाला सिन्धु घिरा धू धू करती लपटें अपार।
बन्दी हम व्याकुल तड़प रहे जाने किस प्रभुवर को पुकार।'[7]

१ नील कुसुम पृ० ५८
२ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ३
३ प्रो० सुधान्शु—हिन्दी कविता का क्रांति-युग पृ० ३५
४ हुंकार पृ ६५
५ वही पृ० ७६
६ हुंकार पृ ८२
७ रेणुका पृ १०६

गाधी के अहिंसावाद का खण्डन

'महात्मा गाधी की राष्ट्रीयता अहिंसा और विश्व प्रेम पर स्थिर है। वह सबसे पहले मानव हैं और अन्त मे भी मानव हैं। उनके हृदय म मानव मात्र क लिए प्रेम ह आदर है और सकुचित जातीयता को वह घणा की दष्टि से देखते है। अहिंसा के अनन्य पुजारी होने के कारण वह किसी भी राष्ट्र की जनता को किसी प्रकार की हानि पहुचाने की भावना को अपने सिद्धान्त के विरुद्ध मानत है।"[1] "मानवता स तात्पय है कि मानव समस्त योनियो म विवकशील बुद्धिमान और श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है अत उसका धम है कि वह सष्टि के अन्य प्राणी वग के प्रति त्याग दया ममता, सहिष्णुता समन्वय क्षमा एव कोमलता आदि उदात्त गुणो के द्वारा आत्मा का सा व्यवहार करें उन्ह समुचित विकास करन म योग दें।'[2] मानवता के आधार पर ही अहिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादन गाधी जी न किया। गाधी जी की धारणा थी कि—'यदि मेरा पुनजन्म हो तो मैं अछूत होकर जन्मना चाहूगा ताकि मैं उनके दुख दद और अपमान म भाग ले सकू और अपने आपको तथा उनको उस दयनीय दशा स छुडाने का यत्न कर सकू।'[3] गाधी जी की अहिंसात्मक नीतियो का दिनकर जी पर कोई प्रभाव नही पडा। हा अछूतोद्धार और समरसता की भावना का प्रभाव निश्चय ही पडा। दिनकर जी का कहना है कि-- मनुष्य जब पशुओ स अलग होन लगा, यह वदना तभी से उनके साथ हो गयी। मानवता ही मनुष्य की वेदना का उत्तम नाम है।'[4]

मानव की करुण एव दयनीय दशा देख कवि का हृदय आर्तनाद करने लगता है। वे मानवता के विनाश दश्य स आदोलित होकर अपन मानवतावादी विचार प्रस्तुत करते हैं। यथा--

इस वयक्तिक भोगवाद स फूटी विष की धारा।
तडप रहा जिसम पडकर मानव समाज यह सारा।[5]
सच है मनुज बडा पापी है नर का वध करता है,
पर भूला मत, मानव के हित मानव ही मरता है।'[6]

दिनकर जी न गाधी जी की अहिंसा नीति का चुनकर विरोध किया है। अहिंसात्मक आन्दोलन की नरम नीतियो का प्रतिरोध करत हुए कवि कहता है—

महाशय! सन्दीप्ति भूल कर अपनी
सिंह भीत हो छिपा धनान्ध गुहा म

१ रामनारायण यादवेन्दु—भारतीय सस्कृति और नागरिक जीवन पृ० ७७
२ दिनकर की काव्य भाषा पृ० ६७
३ हरिजन—सेवक (पूना) २८ सितम्बर १९४०
४ उर्वशी —भूमिका पृ० च
५ कुरुक्षेत्र पृ० ८७
६ वही पृ० १२१

जो करता है इस कदम के मुख पर
मन हू लेकर मुट्ठी भर चिनगारी।"[१]

इतिहास का साक्षी बनाकर कवि ने यह सिद्ध किया है कि संसार में देवत्व ही सदा हारता आया है। हिंसक वृत्तियों को भूलना महापाप है। यथा—

'तृणाहार कर सिंह भले ही पूजे
परमोज्वल देवत्व प्राप्ति के मद में
पर हिंसा के बीच भोगना होगा,
नख रद के क्षय का अभिशाप उसे ही।"[२]

गाधी दर्शन ने क्षमा तथा दया का महत्व प्रतिपादन किया परन्तु दिनकर तो हिंसक प्रेरणा से भी प्रेरित रहे हैं। वे आत्मबल और शरीर बल के सामंजस्य पर बल दिया है—

'वह मनुष्य जो रणारूढ होने पर
वस्तु धर्म का पृष्ठ नहीं खोलेगा,
द्विधा और व्यामोह घेर कर जिसको
मृषा तर्क से बाँध नहीं पायेंगे।"[३]

कवि की दृष्टि में इस विषाक्त वातावरण का नाश अहिंसा से नहीं हिंसा से ही होगा। बापू ने यही प्रश्न 'बापू' काव्य में उठाया गया है—

"अब प्रश्न नहीं, यह एक किरण
किस तरह द्वन्द्व से छूटेगी
है प्रश्न यह पर इसी तरह
बाकी किरणें कब टूटेंगी।"[४]

गाधीवादी मार्ग से जब समाजवाद की स्थापना नहीं हुई तो दिनकर जी देश के सामने हलचल और विप्लव भरे भविष्य निर्माण की भी पेशकश करने लगे—

"बाघ ताड जिस रोज फौज खुलकर हल्ला बोलेगी
तुम दोगे क्या चीज? वही जो चाहेगी सो लेगी।
स्वत्व छीनकर क्रांति छोड़ती कठिनाई से प्राण,
बडी कृपा उसकी भारत में माँग रही वह दान।[५]

पूंजीपति लोग गाधी जी का छाता ओढ कर अपनी काली करतूतों पर पर्दा डालते हैं। दिनकर जी ने यह मत भी व्यक्त किया है कि मार्क्स से बचने के लिए गाधीवाद का सही मार्ग नहीं है—

१ हुंकार पृ ६५
२ वही पृ ६६
३ वही पृ ६७
४ बापू पृ १७
५ नीलकुसुम भूदान कविता से उद्धृत

वहा मार्क्स स डरे हुआ का गाधी चौकीदार नही है,
सूर्योदय या दूत किसी सचय का पहरेदार नही है।
आशय म जिसके असत्य, हिंसा स जिसकी कुत्सित काया
सत्य न देता धूप अहिंसा उसे न दे पाएगी छाया।'[१]

मार्क्स के भय से पूजीपति समाज गाधी को अपना सहारा बनाता है, यह देश के लिए खतरनाक प्रवत्ति है। इसी दूरदर्शिता स कवि न लिखा है—

ना गाधी सठो का चौकीदार नही है
न तो लौहमय छत्र जिसे तुम ओढ बचा लो
अपना सचित कोष मार्क्स की बौछारा स।
इस प्रकार मत पियो, आग स जल जाओगे
गाधी शरबत नही प्रखर पावक प्रवाह था।
घोल दिया यदि इत्र कही अपनी शीशी का,
अनलोदक दूषित अपेय यह हो जाएगा।'[२]

यह तो ठीक है कि गाधी जी ने अपन अथक परिश्रम से देश को स्वतत्र कराया किन्तु समाजवाद की स्थापना होन पर ही गाधीवाद की विजय होगी—

उन्हे पुकारो जो गाधी क सखा शिष्य सहचर है।
कहा आज पावक म उनका वचन पडा हुआ है।
प्रभापूर्ण होकर निकला यह तो पूजा जाएगा
मलिन हुआ तो भारत की साधना बिखर जाएगी।[३]

महात्मा गाधी की अहिंसक नीति स क्षुब्ध हो हिमालय कविता मे कवि न कहा है—

र रोक युधिष्ठिर को तू न यहा, जाने दे उसको स्वग वीर।
पर फिरा हम गाण्डीव गदा लौटा दे अजुन भीम वीर।'[४]

हिन्दी चीनी भाई भाई के नारो न कवि के कानो को पका दिया। इसी नारे से हिमालय के शिखरो पर हम मुह की खानी पडी थी। मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति हिंस्र पशुओ पर कभी भी प्रभाव नही डाल सकती केवल हिंसा ही उस सबक सिखा सकती है—

कौन केवल आत्म बल से जूझकर,
जीत सकता देह का सग्राम है।
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा
आत्म बल का एक बल चलता नही।'[५]

१ नीलकुसुम कांटों का गीत से उद्धृत
२ नीलकुसुम तब भी आता हू मैं कविता से उद्धृत
३ वही एक बार फिर स्वर दो कविता से उद्धृत
४ रेणुका पृ० ७
५ कुरुक्षेत्र पृ० २२

समकालीन राजनीतिक जीवन मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह

कवि ने अनेक स्थलों पर अपने काव्य में स्वतन्त्रता, समानता विश्वबन्धुत्व आदि जीवन मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया है। स्वाधीनता के बिना मानव न तो अपना आत्म विकास कर सकता है और न ही दूसरों की भलाई। 'स्वाधीनता के बिना आप अपने किसी भी कर्तव्य को पूरा नहीं कर सकते। इसलिए आपको स्वाधीनता का अधिकार है और आपका यह कर्तव्य है कि जो कोई सत्ता स्वाधीनता का निषेध करती हो उससे उसे किसी भी उपाय से प्राप्त कर लो।"[1] सच्चा अधिकार उसके अधिकारी के वास्तविक मंगल का एक तत्त्व है, स्थिति है जो सामंजस्य के सिद्धान्त के आधार पर सार्वजनिक मंगल का ही एक प्रमुख अंश है।"[2] राष्ट्रकवि दिनकरजी सोचते हैं कि जब तक स्वतन्त्रता, समानता विश्वबन्धुत्व की भावना विश्व में सर्वत्र नहीं फैलेगी तब तक सच्ची शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। यह अवश्य है कि समाज को जागृति का स्वर मिल गया है परन्तु यह जागृति तब तक अधूरी रहेगी जब तक हमें उचित अधिकार नहीं मिल पाते—

> "टकटकी मेरी क्षितिज पर है लगी,
> निशि गयी, हँसता न स्वर्ण विहान है।"[3]

देश की स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्र की वेदिका पर प्राण न्योछावर करने वाले शहीदों का कवि स्तवन करता है। यथा—

> 'पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
> उगल रही लू लपट दिशाएँ।
> जिनके सिंहनाद से सहमी,
> धरती रही अभी तक डोल
> कलम आज उनकी जय बोल।'[4]

कवि का मत है कि जब भारतवासी स्वार्थों से ऊपर उठेंगे, तभी भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा—

> जब वह आयेगा द्विधा द्वन्द्व मिटेगा।
> आलिंगन में अवनी को व्योम कसेगा।
> विज्ञान धर्म के धड़ से भिन्न न होगा।
> भवितव्य भूत गौरव से छिन्न न होगा।'[5]

कवि आदर्श राष्ट्र पुरुष की कल्पना करता हुआ कहता है कि ऐसा आदर्श पुरुष ही सच्चा जनसेवक बन सकेगा—

१ भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन, पृ ८७
२ एलीमेण्ट्स आव सोशियल जस्टिस, पृ ४१
३ रेणुका पृ (११)
४ हुंकार पृ ४२
५ परशुराम की प्रतीक्षा पृ १७

शल शिखर सा प्राशु गम्भीर जलधि सा।
म्निमणि सा समदृष्टि विनीत विजय सा।
यक्षा सा बलवान काल सा क्रोधी।
धीर अचल सा प्रगतिशील निझर सा। [१]

कवि कहता है कि ऐसा महान् पुरुष ही हम सच्ची स्वतत्रता का भोक्ता बन सकता है। इस सन्दभ म कवि विश्वबन्धुत्व की बात कहता है—

'मांगो मांगो वरदान, धाम चारो से
मन्दिर, मसजिदा गिरजा, गुरद्वारो से।'[२]

कवि भारत के बच्चे-बच्चे को प्ररणा देता है कि वह अपने देश और जाति को सशक्त सुदृढ बनाने के लिए अपनो की भी सहायता करे। इसी दृष्टि से प्रत्यक मानव को जन मन के कल्याण मे लग जाना चाहिये। सभी को सुख दुख समरस भाव म झलना चाहिए। यथा—

वह सुख जो मिलता असंख्य
मनुजो का अपना कर
हँस कर उनके साथ हष म
और दुख म रोकर।
वह जो मिलता भुजा पगु की
ओर बढा देने से,
कन्धा पर दुबल दरिद्र का
बोझ उठा लेने से। . .

होकर भाई भाई
कैसे रुके प्रदाह क्रोध का,
कैसे रुके लड़ाई।
पृथ्वी पर हो साम्राज्य स्नेह का
जीवन स्निग्ध सरल हो,
मनुज प्रकृति से विदा सदा को
दाहक द्वेष गरल हो।'[1]

कवि का अंतिम विश्वास यही है कि अन्तत अहिंसा और प्रेम की विजय होगी तथा जीवन से अन्याय दूर हो जायेगा—

"आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण नीति से ,
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त
सचित रहेगा नहीं जीवन अनीति से ,
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से ,
स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"[2]

अहकारजन्य ध्वस की जब समाप्ति होगी तभी पुरुष अपनी रचनात्मक शक्तियों को पहचानेगा। तभी विश्वबन्धुत्व की भावना जोर पकड़ेगी और प्रेम, करुणा, सत्य, न्याय जैसे मानवीय मूल्यों की विजय होगी—

'विष्णु प्रेम का स्रोत विष्णु करुणा की छाया,
जब भी यह ससार प्रलय से दब जाता है
उठती ऊपर अमृत वाहिनी शक्ति पुरुष की,
नाभि कुण्ड से कमल पुष्प बाहर आता है।
खण्ड प्रलय हो चुका, राष्ट्र देवता सिधारो,
क्षीरोदधि को अब प्रदाह जग का धोने दो,
महानाग फण तोड अमृत के पास झुकेगा,
विषधर पर आसीन विष्णु नर को होने दो।"[3]

युद्ध की अनिवार्यता

युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकारना कवि की क्रान्तिमत चेतना का ही अग है। बर्टेंड रसेल का मत है कि युद्ध वशानुक्रम से प्राप्त मानव की पाशविक वृत्तियों का

१ कुरुक्षेत्र पृ ४१ ४२
२ हुकार पृ० १८१
३ नीलकुसुम पृ० ८८

परिणाम है और युद्ध निरोध के लिए मूल मानवीय वृत्तियों का परिशमन परमावश्यक है।[१] युद्ध और राष्ट्रीयता दोनों में राजनीति है। राजनीति जब तक सफेद लिबास में होती है उसे हम शान्ति कहते हैं। जब उसके कपड़े लहू से लाल हो जाते हैं वह युद्ध कहलाती है।[२] डा० गुप्त के अनुसार— 'दिनकरजी की काव्यकृतियों में निरूपित युद्ध दर्शन' कवि की एतद्विषयक बद्धमूल अवधारणाओं युग जीवन के समुन्नत बोध के प्रतिफलन सामयिक राजनीतिक परिवर्तनों समकालीन परिवेश की आक्रोशमूलक प्रतिक्रियाओं युग धर्म की पुकार और विश्वजनीय मानवीय आस्थाओं का समन्वित परिणाम है। दिनकर का युद्ध दर्शन क्षणिक आवेश का प्रतिफलन नहीं अपितु कवि की रचनाधर्मिता का कालजयी चिरंतन आयाम है।' कवि श्री दिनकर की काव्य साधना का समारम्भ राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की उस बेला में हुआ जब जनमानस उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से आन्दोलित था स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सर्वस्व समर्पण की होड़ लगी हुई थी, क्रान्ति की अनुगूंज एक प्रबल उद्‌घोष बन चुकी थी विरोध विद्रोह विध्वंस और विप्लव को लोगों ने अस्त्र के रूप में वरण कर लिया था। ऐसी परिस्थितियों में एक युवा कवि का क्रान्तिकारी बन जाना सहज स्वाभाविक था।[३] बिहार की विद्रोही राष्ट्रीय चेतना के अग्निमय वातावरण में उनके कवि व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। माखनलाल चतुर्वेदी रामनरेश त्रिपाठी और मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं द्वारा उन्हें राष्ट्रीय कविता के संस्कार प्राप्त हुए।[४] युद्ध को वरण्य मानते हुए कवि श्री दिनकर लिखते हैं—

> "रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
> जाने दे उनको स्वर्ग धीर।
> पर, फिर हमें गाण्डीव गदा,
> लौटा दे अर्जुन भीम वीर।
> कह दे शंकर से, आज करें
> वे प्रलय नृत्य में गूंज उठे
> 'हर हर बम' का फिर महोच्चार।"[५]

क्रान्तिमत्त चेतना कुरुक्षेत्र में भी परिलक्षित होती है। यथा—

> 'रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको
> वृक-व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो,

१ Any one who hopes that in time it may be possible to abolish war should give serious thought to the problem of satisfying harmlessly the instincts that we inhert from long generation of savages —Authority and Indivisual, p 12

२ युद्ध कविता की खोज पृ० २१८

३ डा० देवीप्रसाद गुप्त का लेख राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना पृ० ५५

४ डा० सावित्री सिन्हा—युगचारण दिनकर पृ० १३

५ रेणुका, पृ० ३३

अजा के छगालो को भी बनाओ व्याघ्र,
दाँतो म कराल कालकूट विष भर दो ,
× × ×
रस सोखता है जो मट्टी का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराए तोडो, डालिया कतर दो।"[1]

'रश्मिरथी' म भी कवि न ज्ञानियो को खड्ग धारण करो को कहा है—
"टोक टोक से नही सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
ग्री वाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसलिए मैं कहता हूँ अरे ज्ञानियो ! खड्ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी भूका वह तुम त्रास हरो।"[2]

युद्ध की अनिवार्यता को 'कुरुक्षेत्र' प्रबन्ध काव्य म स्थान-स्थान पर स्वीकारा गया है। यथा—

"युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो मगर,
जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश सघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व म अनिवार्य है।[3]

तथा

शोषण की शृखला के हेतु बनती जो शान्ति,
युद्ध है यथार्थ म व भीषण अशान्ति।
सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की हो
ईश की अवज्ञा घोर पौरुष की श्रान्ति है
पातक मनुष्य का है मरण मनुष्यता का,
एसी शृखला म धर्म, विप्लव है, क्रान्ति है।'[4]

इस प्रकार दिनकरजी की काव्य चेतना युद्ध की अनिवार्यता पर सवत्र बल देती है। वे स्वय कहते हैं कि—" 'कलिंग विजय' नामक कविता लिखते लिखते मुझे एसा लगा मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओ की जड है।[5] क्योकि आत्मरक्षापरक युद्ध को परम्परा धर्म युद्ध मानती थी।"[6] कुछ विचारकों ने कवि दिनकर क इस क्रान्तिकारी रूप का विरोध किया है। जैसे प्रो० रामेश्वर शर्मा ने कवि की राजतन्त्र की प्रबल रूप से समाप्ति और ज्वलित प्रतिशोध की भावना म अराज-

१ कुरुक्षेत्र पृ० ११०
२ रश्मिरथी पृ० १६
३ कुरुक्षेत्र, पृ० २६
४ वही पृ ४१
५ वही—'निवेदन' से उद्धृत
६ युद्ध कविता की खोज पृ० २२६

क्तावाद और आतकवाद का पुट माना है।[1] आचाय न ददुलार वाजपयी का कहना है कि— 'युद्ध के लिए युद्ध की वरेण्यता बताना और शक्ति का निरपेक्ष गा न करना आज की स्थिति मे मानवतावादी या समाजवादी सिद्धा त नही कहा जा सकता यह हम अच्छी तरह समझ होनी चाहिए हम यह कह सकते है कि कुरुक्षेत्र मे युद्ध सम्बधी आधुनिक वास्तविकता का यथेष्ट आकलन नही है न उसम युद्ध विषयक नई समाजवादी दष्टि का ही पूरा निरूपण है।"[2] इसके विपरीत कतिपय समीक्षका न दिनकर क युद्ध-दशन को सराहनीय भी माना है। डा० देवराज के शब्दो मे— कुरुक्षत्र का अतिम निष्कष गीता के इस निष्कष से भिन्न नही है कि कम— जिसमे युद्ध और सघष सम्मिलित हैं—त्याज्य नही। किन्तु उसके पीछ लोक सग्रह है अथात मानवता की निष्काम भावना होनी चाहिए। लेखक की सवश्रेष्ठ कृति का पयवसान द्व द्वात्मक अथवा किसी प्रकार के जडवाद नही वल्कि गीता' के कम मूलक अध्यात्मवाद म हुआ है।'[3] डा० शम्भूनाथ पाण्डेय न कुरुक्षत्र को प्रगति वादी विचारधारा का प्रतिनिधि महाका य मानते हुए कवि की युद्ध मीमासा को सराहा है।[4] आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कुरुक्षेत्र का योग कमसु 'कौशलम की ओजस्वी व्याख्या कहा है।'[5] दिनकरजी के युद्धवादी विचार दशन के सम्ब ध म निश्चय ही दिनकर का य के समीक्षकों और अनुसधानकर्ताओ मे तीव्र मतभेद हैं। विभिन्न मा यताओ के आलोक मे यह निष्कष तो स्वाभाविक है कि उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य म ही नही अपितु सम्पूण मानव जाति के हित अहित क सन्दम म युद्ध की समस्या पर अपने का यो म विचार करते है उनके समाधान स हम सहमत या असहमत हो सकते हैं किन्तु युद्ध सम्ब धी चिन्तन की तार्किकता प्रासागिकता यापकता और गम्भीरता को तो हम स्वीकारना ही होगा।

निष्कष

इस प्रकार दिनकर के का य की क्रान्तिमत चेतना के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का उनकी का यकृतिया के माध्यम स अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि वे प्रवुद्ध राजनीतिक विचारक एव युग दृष्टा साहित्यकार थे। उनकी राजनीतिक मा यतायें दलगत आधार पर विकसित नहीं हुई थी। उन्होंने विश्व के महान् राज नीति विशारदा की कृतियो का गभीर अध्ययन किया था। भारत के उग्र और उदार दोनो ही प्रकार के राजनताओ से उनका समीप का सम्ब ध था। दिनकरजी न निभय

१ दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि प ७३
२ आधुनिक साहित्य प १४५
३ साहित्य चिन्ता प० १६२
४ राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना म डा देवी प्रसाद गुप्त के लेख से उद्धृत, पृ० ६०
५ आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद पृ० ३६५

होकर तानाशाही, साम्राज्यवाद, फासिस्टवाद, राजतन्त्र और जन विरोधी राजनीतिक विचारधाराओं की भर्त्सना की। साम्यवादी चिन्तन से अंशतः सहमत होते हुए भी वे मूलतः मानववादी थे। उन्होंने तत्कालीन भारतीय जीवन और समाज की राजनीतिक चेतना को आत्मसात करके अपनी कृतियों में क्रान्ति का शंखनाद किया, यही दिनकर की क्रान्तिमत चेतना की सार्थकता प्रमाणित होती है।

अध्याय ६

धार्मिक क्रान्ति

भारत एक धम प्रधान राष्ट्र है। अत जीवन के विविध क्षेत्रा म धम का महत्वपूर्ण स्थान सदव स ही रहा है। मध्य-युग म भारतीय धम मे अनेक दोष आ गये थे। उसका वास्तविक स्वरूप बाह्याडम्बर और अ ध रूढियो से आच्छन्न हो गया था। आधुनिक युग मे धम की वास्तविक चेतना का विकास हुआ। जब वतमान समाज धम की अ ध रूढिया पर चल रहा था तो रूढिया पर प्रहार करने वाले अनक समाज सुधारक नेता हुए जिनम राम मोहनराय ने नये युग की चेतना का प्रवतन किया। मिस कालेट ने लिखा है कि— इतिहास मे राममोहन का स्थान उस महासतु के समान है जिस पर चढ कर भारतवप ने अपने अथाह अतीत से अनात भविष्य म प्रवश किया।"[1] इनके पश्चात स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम उल्लखनीय है। इन्होने वदिक धम को ही वास्तविक धम मान कर दववाद मूतिपूजा जाति पाति तथा रूढ प्रथाओ का खण्डन किया। भारत का धम सुधार-आदोलन धम के बाह्य रूपा को लेकर आरम्भ हुआ और इसका विकास धम के आतरिक एव सावजनीन तत्वा की ओर हुआ।[2] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म बाह्याडम्बर और प्रदशन की भावना दिन प्रतिदिन बढती गयी ईर्ष्या द्वप बढते गय। राजनीतिक उथल पुथल सामाजिक मर्यादाओ और औद्योगिक सस्कृति की अभिवद्धि के कारण विकारा का बाहुल्य अवश्यम्भावी है।[3] जब जब समाज म धम को आलम्बन बना कर अत्याचार होते है तब-तब धम के उस मिथ्या रूप के विरोध म धार्मिक क्रान्ति होती है। धम के नाम पर जीवन निर्वाह करने वाले पाखण्डी धम को कलुषित बना देते है। आध्यात्मिक प्रेरणा भारतीय राष्ट्रीयता की एक बहुत बडी विशपता है। साम्यवादी देशो म हुई लाल क्रान्तिया के समान मिलकर पूजीवाद वग वपम्य, तथा जातिवाद आदि का उन्मूलन करना चाहते थे। उनकी मान्यता थी कि आज के युग म मानव को धम मे

१ दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय पृ० ५४५

२ हरिभाऊ उपाध्याय—स्वतत्रता की ओर पृ० २१२ २१४

३ डा गणशदत्त गौड़—आधुनिक हिन्दी नाटको का मनोवज्ञानिक अध्ययन प्रामुख, पृ० ६

विश्वास नही रहा। धम केवल अर्थोपाजन के साधन के रूप म ही पूजा जाता है। यथा—

'धन पिशाच की विजय धम की पावन ज्योति अदृश्य हुई।[1]

× × ×

मनुज-मेघ के पोषक दानव आज निपट निद्वन्द्व हुए
वसे बचें दीन प्रभु भी धनियो के गह मे बन्द हुए।"[2]

वतमान समाज की समस्याओ को दष्टिगत करते हुए दिनकरजी न उस मानव धम की कल्पना की है— जा देशकाल स परे ह एव विश्व क लिए भी मान्य है। इस प्रकार प्रचलित धम का उल्लघन करक उन्हान धार्मिक क्षेत्र म भी क्रान्ति का आह्वान किया है।'[3] क्रान्तिमत चतना के प्रतिनिधि कवि दिनकरजी के का य म धार्मिक क्रान्ति के अनेक आयाम परिलक्षित होते हैं। इनम से कुछ प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं—

१ भाग्यवाद का खण्डन तथा कमवाद की प्रतिष्ठा
२ मानवतावादी धम की प्रस्थापना
३ धार्मिक रूढ़ियो का खण्डन
४ परम्परागत रूढ दाशनिक विचारधाराओ का खण्डन—इस शीषक के अन्तगत निम्नाकित चिन्तन बिन्दु समाहृत किय जा सकते हैं—

(क) निवत्ति पर प्रवत्ति की विजय
(ख) वण धम की प्रतिष्ठा
(ग) द्वतवाद एव अद्वतवाद का सच्चा स्वरूप
(घ) मत्यु पर जीवन की विजय का सदेश
(ङ) भोगवाद पर समष्टि हित की विजय
(च) अध्यात्मदशन की नवीन सकल्पना
(छ) पलायनवादी मनोवत्ति की अवमानना
(ज) आस्था अनास्था के द्वन्द्व का चित्रण
(झ) धार्मिक आन्दोलना का प्रभाव
(ञ) अन्य बिन्दु

भाग्यवाद का खण्डन तथा कमवाद की प्रतिष्ठा

आधुनिक साहित्य म निष्काम कम भाव पर अत्यधिक बल दिया है तथा केवल भाग्य एव विकृत साधना के माग का विरोध किया गया है। 'धम, साधना एव लोक जीवन के निमल स्वरूप को विकृत तथा विषम बनाने वाले तत्वो की हिन्दी के

१ रेणुका—बोधिसत्व पृ० १८
२ रश्मिरथी (छ I सस्करण) पृ० १३
३ डा० पी० आदेश्वर राव—दिनकर वचारिक क्रान्ति के परिवेश म पृ० ८५

सत कवियो ने व्यग्य एव तीव्र स्वर म आलोचना की है।'[१]

दिनकरजी ने भी आध्यात्मिक चिंतन की अपेक्षा इसके कम दशन को अधिक महत्वपूर्ण माना है। कवि गीता के निष्काम कमवाद की प्रशसा करते हुए कहता है—

'बुला रहा निष्काम कम वह
बुला रही है गीता
बुला रही है तुम्हें आत हो,
मही समर सभीता।[२]

कवि का विश्वास है कि जब तक मनुष्य भौतिक जगत म रहता है उसे कम से मुक्ति नही मिलती। लेकिन शत यह है कि वह विवक स ही सतत् काय म तल्लीन रहे। 'कुरुक्षेत्र म गीता के कमवाद का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है। कवि न पलायनवादिता को सवथा हेय माना है। यथा—

'धमराज, कमठ मनुष्य का
पथ स यास नही है
नर जिस पर चलता
मिटटी है आकाश नही है[३]

गीता कमवाद के सिद्धान्त को भारतीय सस्कृति द्वारा अपनाया गया है। यह भारतीय सस्कृति का उच्चादश है।

दिनकर कम को महत्व देते हैं इसीलिए कमयोगी को ही ईश्वर या देवता की सज्ञा देते हैं उनका कहना है कि कत्तव्य-बोध से ही परमात्मा को जाना जा सकता है यथा—

'ओ रचने वाले! बता हाय, आखिर क्या यह जजाल रचा?'[४]

कवि कमवाद की विचारणा का प्रशस्ति गान करते हुए कहता है कि—

"कमभूमि है निखिल महीतल जब तक नर की काया
जब तक है जीवन के कण कण म कत्तव्य समाया।
कम रहेगा साथ भाग वह जहा कही जायेगा।[५]

× × ×

'धमराज स यास खोजना कायरता है मन की,
है सच्चा मनुजत्व ग्रथियां सुलझाना जीवन की।[६]

मनुष्य अपनी दयनीय दशा को भाग्य का फल बताता है और अकमणीय बनकर बैठ

१ डा सावित्री शुक्ल—सत साहित्य की सामाजिक एव सास्कृतिक पष्ठभूमि 'प्राक्कथन' से उद्धत
२ कुरुक्षेत्र पृ० १७५
३ वही पृ० १५८
४ डा० शेखरचन्द्र जन—राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला, पृ० १६७
५ कुरुक्षेत्र पृ० १२७
६ वही, पृ० ११६

जाता है। उसे पता नहीं कि यह भाग्यवाद ही उसके अधिकारों का हरण कर रहा है। कवि भाग्यवाद पर आक्रोशपूर्ण प्रहार करता है—

'भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।''[१]

यदि भाग्य ही प्रबल है तो फिर पृथ्वी उनके लिए अपनी रत्न निधि खोलकर क्यों नहीं रख देती। यथा

'उपजाता क्यों विभव, प्रकृति को, सींच सींच वह जल से,
क्यों न उठा लेता निज संचित कोश भाग्य के बल से
पूछो किसी भाग्यवादी से यदि विधि का यह अंक प्रबल है
पद पर क्यों देती न स्वयं वसुधा निज रत्न उगल है।'

कवि के अनुसार मनुष्य का भुज बल ही सबसे बड़ी शक्ति है। मेहनत करने से उसे सब प्राप्त हो सकता है, अन्य विधि से नहीं—

उद्यम से विधि का अंक पलट जाता है
किस्मत का पासा पौरुष से पलट जाता है।[२]

× × ×

"भाग्य लेख होता न मनुज का, होता कमठ भुज ही।"[३]

× × ×

'विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं
बाहों को, पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।'[४]

× × ×

कवि की धारणा है कि भाग्यवाद एक पाखण्ड है। भाग्यवाद का ढोंग रच कर दीन हीन पर अत्याचार करने वालों पर कवि ने व्यग्याघात किया है। भाग्यवाद की विडम्बना का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

'एक मनुज संचित करता है अर्थ पाप के बल से
और भोगता उसे दूसरा भाग्यवाद के छल से।'[५]

शांतिमत चेतना के कवि दिनकर समाज विरोधी शक्तियों से लड़कर आगे चलने में ही जीवन की सार्थकता मानते हैं। कवि की दृष्टि में यही नया धर्म है—

'श्रम से विमुख नहीं होंगे जो, दुख से नहीं डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर संधि न कभी करेंगे।

१ कुरुक्षेत्र पन्द्रहवां सस्करण पृ० १३२
२ रश्मिरथी पृ० ५४
३ कुरुक्षेत्र पृ० १३५
४ रश्मिरथी पृ० ५४
५ कुरुक्षेत्र पृ० १३४

वण धम होगा धरती पर बलि से नही मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज स, उसी शान से मरना।"[१]

इस तरह कवि निष्काम कमयोग को लेकर सग्राम करने का सदेश मनुष्य मात्र को देते हैं। इसके विपरीत भाग्यवाद की विचारधारा को समाज की प्रगति के विरुद्ध मानते हैं।

मानवतावादी धम की प्रतिष्ठा

मगध महिमा मे दिनकरजी ने अपने मानवतावादी चिन्तन को व्यापक परिप्रेक्ष्य मे अभिव्यक्ति प्रदान की है। यथा—

' छिन्न भिन्न है देश, शक्ति भारत की बिखर गई है
हम तो केवल चाह रहे उसको एक बनाना।
मृदु विवेक मे बुद्धि विनय से स्नेहमयी वाणी से,
अगर नही, तो धनुष बाण से पौरुष स, बल से।"[२]

मानवतावादी क्रांति के प्रतीक बुद्ध का कवि ने अभिनदन किया है—

अनाचार की तीव्र आच म,
अपमानित अकुलाते हैं।
जागो बोधिसत्व भारत के
हरिजन तुम्हे बुलाते हैं।
जागो विप्लव के वाक्दभियो
के इन अत्याचारो से।
जागो हे जागो तप निधान
दलित के हाहाकारा से।"[३]

सच्चा मनुष्य वही है जो व्यक्ति व्यक्ति के बीच की दीवार को ताड दे। सारी बाधाए और विरोध दूर कर दे—

तोड दे जो बस वही ज्ञानी वही विद्वान
एक नर से दूसर के बीच का व्यवधान,
और मानव भी वही। [४]

धार्मिक रूढियो का खण्डन

'धार्मिक जगत मे विशप महत्त्वपूण कोई क्रान्ति नही हुई लेकिन धार्मिक मान्यताओ को नई रोशनी म परखने की प्रवृत्ति ने जोर पकडा। आय समाज के तक

१ रश्मिरथी प० ६०
२ इतिहास के आसू पृ १७
३ रेणुका प० १५
४ कुरुक्षेत्र प० ११६

और विवेक ने अंधविश्वासों को कमजोर किया।'[१] भगवान् पर मनुष्य का इतना अंधविश्वास है कि वह निष्क्रिय बन गया है और प्रयत्न भी नहीं करना चाहता। भगवान् उनका साथ नहीं देते जो स्वयं अपना साथ नहीं देते हैं। इस निष्क्रिय भाव से कवि दिनकर खीझ कर कहते हैं—

"मरे हुओं की याद भले कर किस्मत से फरियाद भले कर,
मगर राम या कृष्ण लौटकर फिर न तुझे मिलने वाले हैं
टूट चुकी है कड़ी पूजा के ये फूल फेंक दे, अब देवता नहीं होते हैं।"[२]

हमारे देश में सन्त से ही "परम्पराओं में लोगों का इतना मोह था, कि धार्मिक आडम्बरों में विश्वास न रखते हुए भी वे उनका पालन करते आ रहे थे। अतः इस कारण भी इस युग में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ और धीरे धीरे धार्मिक रूढ़ियों में लोगों की आस्था कम होती गई।[३] कवि दिनकर की भी धारणा है कि धार्मिक रूढ़ियों का अन्त होना चाहिए। कवि अवतारों और पैगम्बरों तक ही सीमित नहीं रहना चाहता वरन आगे बढ़कर जीवन यात्रा जिताने का शुभाकांक्षी है—

'फरमान नये नेताओं के जो हैं राष्ट्रों में टँगे हुए,
अवतार और ये पैगम्बर जो हैं पहर पर लगे हुए,
ये महज मील के पत्थर हैं मत इन्हें पंथ का अन्त मान,
जिन्दगी माप की चीज नहीं, तू इसको अगम अनन्त मान।'[४]

'आर्य समाज आन्दोलन आत्मिक शुद्धि पर अधिक बल देता था, और लोगों में स्वदेश प्रेम आत्म गौरव, जातीय धर्मनिष्ठा और परम्परागत रूढ़ियों को समाप्त करने की भावना का संचार कर रहा था।'[५] इसीसे प्रेरित होकर कवि ने जातिवाद का खण्डन किया है। अभिजात वर्ग पर वह एक कटु व्यंग्य करता है—

'मस्तक ऊँचा किये जाति का नाम लिये चलते हो,
मगर असल में शोषण के बल से सुख में पलते हो
अधम जातियों से थर थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो अँगूठे का दान।'[६]

'प्रेमचन्द ने अछूतों की दयनीय अवस्था का चित्रण करने के लिए उनकी दुर्दशा को अपने उपन्यासों का विषय बनाया।[७] ठीक इसी प्रकार दिनकर ने भी अछूतोद्धार के अनेक सन्दर्भों को काव्य का विषय बनाया है। यथा—

१ डा० शान्तिलाल भारद्वाज राकेश—आधुनिक राजस्थानी साहित्य पृ० १६
२ नीम के पत्ते पृ० २७
३ डा० सुरेश सिन्हा—हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना पृ० १३
४ नीम के पत्ते—रोटी और स्वाधीनता पृ० ३
५ सर पी जा० ग्रिफिथ—ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इण्डिया (लन्दन १९५२) पृ० २५२ २५३
६ रश्मिरथी पृ० ४
७ डा० सुरेन्द्र शुक्ल—हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता पृ० ६२

अनाचार की तीव्र आच म,
अपमानित अकुलात हैं।
जागो बोधिसत्व भारत के
हरिजन तुम्ह बुलात है।[१]

वष्णव भक्ति आदोलन ही एक ऐसा धार्मिक आदोल्न है जिसके विषय म यह कहा जा सकता है कि वह इस्लाम और हिन्दुत्व के सम्पक का परिणाम है।[२] दिनकरजी विश्वव धुरव की भावना पर बल देत हुए हिन्दू मुस्लिम भेद भाव समाप्त कर जातीय जीवन म एकता के बीज बाना चाहत हैं। इस कथन म सचमुच कवि-हृदय की व्यथा कथा अकित है—

'जलते है हिन्दू मुसलमान
भारत की आखें जलती हैं।
आन वाली आजादी की
ला दानो पाखें जलती है।
व छुरे नही चलत छिदती
जाती स्वदेश की छाती है।
लाठी खाकर भारत माता
बेहोश हुई जाती है।[३]

कवि आडम्बरा को आग लगने का आह्वान करत हैं—

"लगे आग इस आडम्बर म,
वैभव के उच्चाभिमान म,
अहकार के उच्च शिखर म
स्वामिन् अधड आग बुला दो,
जले पाप जग का क्षण भर म।"[४]

अतत हम देखते हैं कि दिनकरजी ने धम के पाखण्डी रूप पर प्रहार कर सता की तरह धार्मिक एकता की बात भी कही है—

धम भिन्नता हो त, सभी जन,
शल तटी मे हिल मिल जाएँ
ऊषा के स्वर्णिम प्रकाश म
भावुक भक्ति मुग्ध मन गाए।"[५]

१ रेणुका प० १५
२ डा० रामचद्र तिवारी—कबीर मीमांसा प० १३
३ सामधनी पृ ३१
४ रेणुका प ३
५ वही पृ० ३४

परम्परागत दार्शनिक विचारधाराओं का खण्डन

'गीता' में श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

"सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुच ।"[1]

अर्थात सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं आप सबको पाप कर्मों से मुक्ति दूंगा। इस कथन का कवि की मान्यता प्राप्त नहीं है। कवि कहते हैं कि इस प्रकार के रूढ़ विश्वासों से भ्रमित जनता निकम्मी हो जायेगी। कवि दिनकर पूछते हैं—

"यही धर्मिष्ठता ? नय नीति का पालन यही है ?
मनुज मनपुज के मालिन्य का क्षालन यही है ?
यही कुछ देखकर संसार क्या आगे बढ़ेगा ?
जहां गोविन्द है उस शृंग से ऊपर चढ़ेगा ?"[2]

इसी विचारधारा का फल यह हुआ है कि—

"साधन को भूल सिद्धि पर जब टकटकी हमारी लगती है,
फिर विजय छोड़ भावना और कोई न हृदय में जगती है,
तब जो भी आते विघ्न रूप हो, धर्म, शील या सदाचार
एक ही सदृश हम करते हैं सबके सिर पर पद प्रहार।"[3]

कवि की दृष्टि में धर्म जीवन के कर्त्तव्यों के सवहन में है। तभी तो वे धर्म अत्यन्त व्यापक मान्यताओं में अपना विश्वास व्यक्त करता है—

"है धर्म पहुंचना नहीं धर्म तो जीवन भर चलने में है,
फैलाकर पथ पर स्निग्ध ज्योति दीपक समान जलने में है।"[4]

निवृत्ति पर प्रवृत्ति की विजय

कवि निवृत्ति और वैराग्य भाव का खण्डन करते हुए जीवन की समस्याओं के प्रति यथार्थवादी समाधान देते हुए सच्चे धर्म की प्रस्थापना पर बल देता है। निवृत्ति भावना का निराकरण कवि ने इन शब्दों में किया है—

दीपक का निर्वाण बड़ा कुछ,
श्रेय नहीं जीवन का।
है सद्धर्म दीप्त रख उसको
हरना तिमिर भुवन का।"[5]

1 भगवद्गीता—मोक्ष सन्यास योग श्लोक संख्या ६६
2 रश्मिरथी पृ० १७०
3 वही पृ० ११४
4 रश्मिरथी पृ० ११२
5 कुरुक्षेत्र पृ० १२८

कवि की धारणा है कि अध्यात्म का अ धाधु ध वरण राष्ट्र के जीवन की तेजस्विता का विनाशक होता है। कवि ने इस तथ्य पर इन शब्दो म प्रकाश डाला है—

उपशम को ही जो जाति धम कहती है
शमन्म विराग को श्रेष्ठ कम कहती है।
दो उन्हे राम तो मात्र नाम ले लेगी।
विक्रम 'नरासा' स न काम व लेगी।"[1]

दिनकरजी न कम धम का महत्ता का बखान रश्मिरथी प्रवध काव्य म किया है। परशुराम की प्रतीक्षा नामक लम्बी कविता म उन्होने धम क रूढ अकमण्य और शांति विरोधी स्वरूप की जमकर भत्सना की ह तथा सम्पूण राष्ट्रीय जीवन कमण्यता आत्मनिभरता और परशुराम जसी शक्तिमतता का आह्वान किया है।

द्वैतवाद एव अद्वैतवाद का सच्चा स्वरूप

दिनकरजी प्रकृति तथा माया क सम्ब ध म कहत है कि माया बुद्धि का भ्रम है जिससे हम ईश्वर तथा प्रकृति म भेद करते हैं। माया के द्वारा हम सत्य को परखकर उस पान क लिए सघष म लग जाना चाहिये किन्तु प्रकृति नियामिका शक्ति है। यथा—

मूढ़ मनुज ! यह भी न जानता, तू ही स्वय प्रकृति है ?
फिर अपन स आप भाग कर कहाँ त्राण पाएगा ?[2]
× × × ×
'माया वह क्या मया मदत हो अस्तित्व प्रकृति का।[3]
× × × ×
'प्रकृति नही माया माया है नाम भ्रमित उस धी का
बीचो बीच सप सी जिसकी जिह्वा फटी हुई है
एक जीभ म जो कहती कुछ सुख अर्जित करने को
और दूसरी स बाकी का वजन सिखलाती है।
मन की कृति यह द्वैत प्रकृति म सचमुच द्वैत नही है।
जब तक प्रकृति विभक्त पडी है श्वेत श्याम खण्डो म
विश्व तभी तक माया का मिथ्या प्रवाह जाता है।"

मृत्यु पर जीवन की विजय का सन्देश

कवि का जीवन म पूण आस्था है। जीवन की अमरता उसे सत्य जान पडती है इसीलिए उसन जीवन की शाश्वत विजय का बखान किया है—

१ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० २३
२ उर्वशी पृ० ७७
३ वही पृ० ७६

'पथ निर्विहन सरणि जा पा
तब भी चलती रहती है
एक शिखा ले भार अपर का
जलती ही रहती है।
झड़ जाते हैं कुसुम जीण दल
नय फूल खिलते हं,
रुक जाते कुछ, दल मे फिर
कुछ नय पथिक मिलत ह।'[1]

जो व्यक्ति सतत अकमण्य रहकर मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नही देखता वह जगत मे सघष करने म असमथ हो जाता ह—

'निष्कार का वतमान
जावत के उद्वेलन का
करता रहता ध्यान अहर्निश
जा विद्रूप मरण का।
अकमण्य वह पुण्य काम,
किसके कब आ सकता है ?
मिट्टी पर कैसे वह कोई
कुसुम खिला सकता है।''[2]

जीवन की नश्वरता के प्रति कवि ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है—

"फूलों पर आसू के मोती
और अश्रु म आशा
मिट्टी के जीवन की छोटी
नपी तुली परिभाषा।'[3]

भोगवाद पर समष्टि हित की विजय

क्रान्तिकारी दिनकर पर माक्सवादी चि तन का प्रभाव था। व कवल स्वय का नहीं वरन् जगत को दखते थ। दिनकरजी का मत है कि इस भ गवाद की सकीण धारणा स वगवषम्य उत्प न होता है—

'उस भूत नर पैसा परम्पर
की शका म, भय म,
निरत हुआ कवल अपन ही
हेतु भोग सचय म,

१ कुरुक्षत्र पृ० १३२
२ वही पृ० १६१
३ वही पृ १४५

"ग वर्यमितर भागवा" स
फूटी विष की धारा,
तप रहा जिसम पड कर,
मानव समाज यह सारा । [1]

तथा

तज समष्टि का व्यष्टि चली थी
निज को सुखी बनाने
गिरी गहन दासत्व गत के
बीच स्वय अनजाने । [2]

अध्यात्म दशन की नवीन सकल्पना

आध्यात्मिकता स मानव हृदय म कोमल भावनाएँ जागत हो जाती है जिसस राष्ट्र का तज नष्ट हो जाता है । यथा—

उपशम का ही जो जाति धम कहती है
शमदम विराग को श्रेष्ठ कम कहती है
दो उन्हे राम तो मात्र नाम त लेंगी,
विक्रमी शरासन स न काम व लेंगी ।
नवनीत बना देती झट अवनारी को
मोहन मुरलीधर पावज यवागी को । '[3]

जनता का उत्साह ठडा करने वालो के विरुद्ध कवि न कटु व्यग्य किया है—

गीता म जो त्रिपिटक निकाय पढते है
तल्वार गला कर जो तकली गढते हैं
सारी वसु धरा म गुरुपद पाने को
प्यासी धरती के लिए अमत लाने को
जो सत लाग सीधे पाताल चले हैं
अच्छे है अब (पहल भी बहुत भल हैं) । [4]

जीवन से पराड मुख करने वाली अध्यात्मिकता और कुछ नही, पलायनवादी प्रवृत्ति मात्र है जिसका कवि ने जम कर खडन किया है—

जो पुण्य-पुण्य बक रह उन्ह बकन दो,
जस सदिया थक चुकी उन्ह थकन दो ।

१ कुरुक्षत्र पृ० १०४
२ वही पृ० १०४
३ परशराम की प्रतीक्षा' पृ २३
४ वही, पृ० १

पर देउ चुक हम तो सब पुण्य कमा कर
सौभाग्य मान, गौरव अभिमान गवा कर।
व पियें शीत तुम आतप घाम पिया रे।
व जपें राम तुम बनकर राम जियो रे।"

अध्यात्म न्शन स जीवन म जिन पलायनवादी प्रवृत्तियो का जन्म होता है, कवि उसकी स्पष्ट शब्दों म विगहणा की है—

'यह निवृत्ति है ग्लानि, पलायन का यह कुत्सित क्रम है
नि श्रयम यह श्रमित पराजित, विजित बुद्धि का भ्रम है।'[1]

धार्मिक आदोलनो के प्रभाव का मूल्याकन

दिनकरजी पर धार्मिक आदोलनो का कोइ प्रभाव नहीं पडा, व तो आध्यात्मिक क्रांति की सफलता के ही स्वप्न देखते रह। तभी तो वे कहते हैं—

'कृष्ण दूत बन कर आया है, सधि करो सम्राट।
मच जायेगा प्रलय, कही वामन हो पडा विराट।
स्वत्व छीन कर शान्ति छोडती कठिनाई स प्राण।
बडी कृपा उसकी भारत म माग रही वह दान।'[3]

वस्तुत दिनकर ने धम का ढोगी या कमकाडी स्वरूप निकृष्ट मानकर उसकी अव मानना की।

आस्था अनास्था म द्वन्द्व का स्वरूप

अज्ञान क प्रति जिज्ञासा के भाव कवि को यह पूछने के लिए विवश करते हैं कि इस ससार का नियामक कौन है? दिनकर क सम्पूर्ण काव्य म इसी रहस्य को जानने के लिए एक आकुलता है। यथा—

देखें तुझे किधर स आकर?
नही पथ का ज्ञान हम।
बजती कही बासुरी तेरी,
बस, इतना ही भान हम।
शिखरो से ऊपर उठने
देती न हाय लघुता अपनी,
मिट्टी पर झुकने देता है
देव! हमे अभिमान नही।"[4]

अपनी जिज्ञासा का उचित समाधान न होने पर कवि निराश होकर पूछता है कि—

१ परशुराम की प्रतीक्षा से उद्धृत
२ कुरुक्षेत्र पृ० १२४
३ नीलकुसुम पृ० ७६
४ रसवन्ती पृ० ६

"सुरभि सुमन क बीच देव
कसे भाता "यवधान तुम्ह।"[1]

निनकर ना इम अ यक्त सत्ता क विरुद्ध आक्रोश है। सष्टि क निर्माण क लिए दाश निक विश्वासा म अनास्था होते हुए भी वह ज म स आस्तिक है अत दशन स ही वह अपन तर्कों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है—

था अनस्तित्व सकता समेट
निज म क्या वह विस्तार नहीं ?
माया न किसे चर शू य, बना
जिस दिन था यह ससार नही ?
तू राग मोह म दूर रहा
फिर किसने यह उत्पात किया ?
हम थे जिसम, उस ज्योति या कि
तम से था उसको प्यार कहो ?[2]

इस नश्वर ससार म केवल पीडा और दुख का ही सवत्र बोलबाला पाता है। इस प्रकार ससार के दुखा के कारण उसका ईश्वर पर स विश्वास हट जाता है। वह इस केवल माया जाल समझता है। ससार की नि सारता बताते हुए भगवान् का कवि मानो चुनौती के स्वर म कहता है—

तिल तिल हम जल चुके
विरह की तीव्र आच कुछ मद करो,
सहने की अब सामथ्य नही
लीला प्रसार यह ब द करो,
चित्रित भ्रम जाल समेट करो
हम खेल खलते हार चुके,
निर्वासित करो प्रदीप, शू य म
एक तुम्ही आन द करो।"[3]

विज्ञान के प्रगति क साथ साथ मनुष्य भावना की महत्ता को भूलता गया। जीवन म दया प्रेम करुणा विश्वास आदि मूल्या का जो महत्व है, उस भुलाया गया। इसी लिए सकटापन्न प्रलय क बादल मँडरा रहे है—

कि तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही नि शेष,
छूट कर पीछे गया ह रह हृदय का देश।
नर मानाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण म करते दुख की देवता चीत्कार।

१ हुङ्कार पृ ६
२ वही, पृ० ६०
३ वही पृ ६६

चाहिए उस को न केवल ज्ञान,
देवता हैं मागते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान।"[1]

× × ×

'ले चुकी सुख भाग समुचित से अधिक है देह
देवता हैं मागते मन के लिए लघु गेह।"[2]

इस प्रकार मानवीय आस्था और अनास्था में द्वन्द्वात्मक स्थिति निरन्तर बनी हुई है। विज्ञान की उपलब्धियों की चकाचौंध और अपरिमित बौद्धिक विकास ने निरन्तर मानवीय जीवन मूल्यों की आभा को भी धूमिल किया है। फिर भी कवि प्रगतिशील धार्मिक चेतना के प्रति आश्वस्त है क्योंकि इसी चेतना के बल पर मानव प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील चेतना के समर्थ रचनाकार श्री रामधारीसिंह दिनकर ने भारतीय जीवन और समाज में परिव्याप्त रूढ़िवादी धार्मिक नीतियों का खण्डन करके अपनी क्रान्तिमत रचना दृष्टि का प्रभूत परिचय दिया है। दिनकरजी ने वर्ण धर्म की प्रतिष्ठा युग धर्म के रूप में की है। धर्म के नाम पर होने वाले सदाचार और वाह्याडम्बरों का स्पष्ट शब्दों में खण्डन करके युग-जीवन की चेतना और बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मानव धर्म या वर्ण धर्म की कवि सकल्पना निश्चय ही प्रशसनीय है। दिनकरजी ने कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा, द्वन्द्वगीत, उर्वशी आदि कृतियों के माध्यम से जिस धार्मिक क्रान्ति का आह्वान किया है सभी दृष्टियों से अभिनन्दनीय है।

१ कुरुक्षेत्र पृ० ११०
२ वही पृ० ११२

अध्याय ७

साहित्यिक क्रान्ति

कवि की पुकार समाज की पुकार होती है। वह समाज के भावो को अपनी वाणी स शक्ति ही नही देता वल्कि नयी दिशा नयी चेतना और उदबोधन भी देता है। समाज की मागा और आवश्यकताओ को जन साधारण के सामने रख कर जहा उनमे उनके कत्तव्य की भावना जगाता है वहा सामाजिक विकृतियो के प्रति विद्रोही भी बनाता है।[1] कवि जो साहित्य रचता है वह जीवन की ही अभियक्ति है।' साहित्य का जीवन से दुहरा सम्ब ध है। एक क्रियारूप म दूसरा प्रतिक्रिया के रूप मे। क्रिया रूप म वह जीवन की अभियक्ति है और प्रतिक्रिया रूप मे निर्माता और पोषक। यह प्रतिक्रिया जब सघष का रूप धारण कर लेती है तो साहित्यिक क्रान्ति हो जाती है।[2] क्रान्तिकारी साहित्य का प्रादुर्भाव प्रताडित जन समुदाय क विदीण हृदय स होता है। काय म ही कवि इन सबको सग्रहीत कर विद्राह की भावना जगाता है। आज के जीवन की पष्ठभूमि म खण्डित मयादायें टूट मूल्यो की अस्त व्यस्त परम्परा मानव आत्मा की वदी प्रताडित भावनाए भौतिक द्वन्द्वो क साथ नयी भावनात्मक रागात्मक अनुभूतिया इन सबका सामूहिक प्रभाव हमारी कला यजना और अभिरुचि मे निहित है।[3] समाज की बुराइया कुरीतिया, अत्याचार अनाचार अयाय सब जो चित्रित होते हैं वे घणा या वीभत्स रस क विषय हाते हैं।[4] इन्ही सब चीजा स साहित्य म क्रान्ति पनपती है। दिनकर की काय चेतना अभाव स भाव निषेध से स्वीकृति और निवृत्ति स प्रवत्ति की ओर अग्रसर हुई है।[5]

दिनकर की काय-यात्रा की कहानी बडी अदभुत है साथ ही बडी विचित्र रही है। मूलत वे राष्ट्रीय भावा क वाहक प्रगति के चितेर और मानवतावादी विचारा को काव्यबद्ध करने वाले प्रतिभावान कवि है। उनके समग्र साहित्य म राष्ट्रीयता और मानवता के भावा का मधुर मिलन है कि तु विचित्रता यह है कि क्रान्ति का यह चित्र

१ प्रकाश नगायच—हिन्दी के पाच लोकप्रिय कवि और उनका काव्य पृ० १३

२ डा० नगेन्द्र—विचार और निबन्ध पृ २५

३ लक्ष्मीकान्त वर्मा—नयी कविता के प्रतिमान पृ० ४६

४ डा० कृष्णदेव झारी—उपयासकार प्रेमचन्द और उनका गोदान एक नया मूल्याकन प्रकाशकीय पृ० १

५ युगचारण दिनकर, पृ० ६८

कार कभी अंगारों पर चलने का करना है तो कभी कोमल पुष्पों की शैय्या पर। 'साहित्यिक क्रांति' निकरजा के काव्य में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर मूल्यांकित की जा सकती है—

१ साहित्यिक सरचना के विषय चयन में क्रान्ति
२ काव्य रूपात्मक प्रयोगों का स्वातन्त्र्य
३ भावात्मक सरचना का स्वरूप
४ शिल्प सरचना के तत्वों में स्वतन्त्रता
५ काव्यशास्त्रीय मान्यताएं

साहित्यिक सरचना के विषय चयन की पृष्ठभूमि

काल की अविच्छिन्न धारा के समान साहित्यिक परम्पराएं और प्रवृत्तियां निरन्तर गतिशील रहा करती हैं।[1] भौतिक जगत में प्रत्येक तत्व विकासशील है, प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है। ठीक उसी प्रकार साहित्य भी देशकाल के अनुसार परिवर्तित तथा विकसित होता रहता है। चूंकि साहित्य समाज का दर्पण है अत साहित्य में काल विशेष की घटनाओं का चाहे वह धार्मिक तथा सांस्कृतिक या राजनीतिक अथवा सामाजिक, प्रभाव पड़ना आवश्यक है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में परम्परा में राजनीति की दृष्टि से अव्यवस्था गृह कलह तथा पराजय की स्थितियां थी। चूंकि जनता में राजनीतिक चेतना विलुप्तप्राय हो चुकी थी। अत लोग केवल ईर्ष्या और द्वेष में फँसे हुए थे। भारतीय इतिहास का यह पतन का काल था। आदिकाल में धार्मिक स्थिति भी सतापजनक बनी थी। मन्त्र तथा तन्त्र की सिद्धियां प्रचलित हो गयी थीं। धार्मिक आडम्बर धर्म को लांछित कर रहे थे। समाज रूढ़िग्रस्त हो चला था। इस काल में एक तरफ सिद्ध जैन और नाथ साहित्य की रचना हुई तो दूसरी तरफ वीर काव्य रचा गया। खुमान रासो बीसलदेव रासो पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो आदि में युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है। शृंगार रस से परिपूर्ण काव्य विद्यापति का मिलता है। हिन्दी साहित्य के विकासक्रम में भक्तिकाल से तात्पर्य उस युग से है जिसमें मुख्यत भागवत धर्म के प्रचार प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। जनता युद्ध आदि से संत्रस्त थी। अत उनके ऐसे वातावरण में विरक्त होना स्वाभाविक ही था। अत ईश्वरोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे धीरे प्रचलित काव्य भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनता गया और कुछ समय व्यतीत होने पर भक्ति विषयक साहित्य की बाढ़ हो आ गयी।

रीतिकाल में कवि ने परम्परा में ढल कर ही अपना काव्य रचा। उसका काव्य जनपथ के लिए नहीं वरन् राजपथ के लिए था। उसके काव्य में न तो चारणों जैसी राजाओं की प्रशस्ति ही थी और ना ही भक्तिकाल जैसे धार्मिक तत्व थे। कवि को रीतिबद्ध होकर रस, अलंकार, नायिका भेद ध्वनि आदि के वर्णनों के सहारे अपनी

१ डा० शिवकुमार शर्मा—हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ० १

न विरव प्रतिभा का चमत्कार दिखाना पड़ा। इस काल में शृंगारिकता की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखलाई देती है। विलासी राजा ।। का प्रसन्न रखना ही कवि का कर्त्तव्य था। अत नारी चित्रण बड़ी बारीकी से किया गया। वस्तुत रीतिकालीन साहित्य विलासी तथा ऐश्वर्यमय वातावरण में लिखा गया।

रीतिकाल की विलासिता के कारण उस युग का अन्त हुआ और भारतेन्दु युग से नया काव्य पल्लवित होने लगा। भारतेन्दु युग का साहित्य रीतिकाल तथा आधुनिक काल का संधि साहित्य है। भारतेन्दु युग में ही सर्वप्रथम सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर चिन्तन किया गया। अंग्रेजी शासन में भारत में एक नवीन राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक चेतना का विकास हुआ, जिससे साहित्य अछूता नहीं रह सका और प्रकृति चित्रण शृंगार लीला वर्णन के साथ ही नवीन सामाजिक का विकास हुआ। द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता का स्वर उद्दीप्त हुआ। डा० शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं—'आश्चर्य की बात यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही नहीं बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों तक अर्थात छायावादी काव्यधारा के फूटने से पहले तक के हिंदी कवि संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण करने का साहस नहीं कर पाये। जातिगत सम्प्रदायगत और भाषागत स्वार्थों से ऊपर उठ कर वे अपनी वाणी में राष्ट्रीय एकता का वह उदात्त स्वर नहीं फूंक पाये जिसने रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल (पाकिस्तान की मांग से पहले के इकबाल) के कंठ से निकल कर सारे देश में नया स्पन्दन भर दिया था।'[1]

छायावादी काव्य ने नर नारी दोनों को पुरानी सामाजिक और नैतिक रूढ़ियों से मुक्त होने की कामना को वाणी दी। जिस प्रकार उसने जड़ सामूहिकता होने की कामना का व्यक्ति की वास्तविकता के लिए संघर्ष किया और फिर उसके व्यक्तित्व के विकास में सहयोग दिया और किस तरह छायावाद ने मानव मन में सार्वभौम भावना का बीजारोपण करके उसके मानसिक क्षितिज पर विस्तार किया' आदि का वर्णन छायावाद युग में मिलता है। प्रगतिवादी युग में साहित्य का मूल विषय था—रूढ़ि विरोध शोषित का करुण गान शोषकों के प्रति घृणा और रोष क्रांति की भावना सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण तथा मानवतावाद मार्क्सवाद का समर्थन आदि। प्रगतिवादी युग के प्रतिनिधि कवि हैं—श्री रामधारीसिंह दिनकर। रेणुका द्वन्द्वगीत परशुराम की प्रतीक्षा इतिहास के आंसू सामधेनी रश्मिरथी धूप और धुआं आदि काव्यों में दिनकरजी की क्रमिक चेतना का विकास दिखाई देता है। अपने इसी अतीत और वर्तमान काव्य भूमि पर हमारे आलोच्य कवि दिनकर का उदय हुआ।'[3] दिनकरजी ने अपने साहित्य को छायावाद की काल्पनिक उड़ान नहीं भरने दी। उन्होंने साहित्य को पृथ्वी से संबंधित किया। रूढ़ियों में जकड़े जनमानस

१ हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां पृ० ४२७
२ नामवरसिंह—छायावाद ऐतिहासिक—सामाजिक विश्लेषण पृ ६६
३ सालधर त्रिपाठी प्रवासी—दिनकर के काव्य पृ० २८

को दिनकर का साहित्य ही मुक्त कर सकता था। दिनकर ने जीवन के हर क्षेत्र की भाँति साहित्यिक क्षेत्र की रूढियो का भजन कर साहित्यिक क्रांति का परिचय दिया।

विषय चयन मे क्रान्तिमतता का स्वरूप

रेणुका मे 'साम्प्रदायिक' सिद्धान्ता की कटु आलोचना की गयी है। गाधीजी के अछूतोद्धार से दिनकरजी बहुत प्रभावित हुए। 'रेणुका' की बोधिसत्व कविता इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर लिखी गयी है। इसमे अहिंसावाद का खण्डन किया है। दिनकर ने युगधर्म की याद दिलाते हुए बोधिसत्व का आह्वान किया है[1]—तथा शोषण के मर्मस्पर्शी चित्र खीचे गये है।[2] लेनिन की क्रान्ति चेतना का भी आह्वान किया गया है—

> 'देख कलेजा फाड कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें
> बनती ही उस पर जाती हैं वैभव की ऊँची दीवारें।
> धन पिशाच के कृषक मेघ मे नाच रही पशुता मतवाली
> आगन्तुक पीते जाते हैं दीनो के शोणित की प्याली।
> उठ भूषण की भावतरगिणी लेनिन के दिल की चिनगारी।
> युग मर्दित यौवन की ज्वाला जाग जाग री क्रान्तिकुमारी। [3]

हुकार—हुकार मे दिनकर अपनी वेदना को चीख चीख कर व्यक्त करते हुए प्रतीत होते है। इसमे कवि साम्राज्यवाद तथा पूजीवाद से क्षुब्ध दिखाई देता है। वह कृषको तथा श्रमिको की समस्याओ का हल तथा अत्याचारियो से बदला लेने को समुत्सुक है। पराधीनता की बेडियो से जकडे हुए हिन्दुस्तान की जनता के प्रति कवि ने रोष तथा लज्जा दोनो के भाव व्यक्त किये हैं—

> बेबसी मे काप कर रोया हृदय शाप सी आहे गरम आइ मुझे
> माफ करना, नाम लेकर याद मे हिन्द की मिट्टी शरम आई मुझे।
> बोलना आता नही तकदीर को दिल्ली वाले आसमा पर बोलते।
> खू बहाया जा रहा इन्सान का, सीग वाले जानवर के प्यार मे।
> कौम की तकदीर फोडी जा रही मस्जिदो की ईट की दीवार मे।' [4]

रसवन्ती—इसके विषय चयन मे कवि सौन्दर्यान्वेषी दिखाई देता है। इसमे दिनकर की सौन्दर्यमूलक और शृगारपरक रचनाए सकलित हैं। कवि चेतना नारी की ओर केन्द्रित है। सरल एव कोमल भावो की यहा प्रशस्य अभिव्यक्ति हुई है—

> 'भीग रहा मीठी उमग से दिल का कोना कोना
> भीतर भीतर हँसी देख लो बाहर-बाहर रोना।' [5]

१ रेणुका० १८
२ वही पृ० ३०
३ वही पृ० ३२
४ हुकार पृ ७
५ रसवन्ती बालिका से वधू नामक रचना से उद्धृत

द्वन्द्वगीत—यहा कवि का अंतजगत और वाह्य व्यक्तित्व सुख-दुख तथा आस्था-अनास्था के द्वन्द्व म झूलत हैं।" इसमे रहस्यात्मक, द्वन्द्वात्मक, सुखात्मक और लोकहितात्मक गीत पाये जाते हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने इनम भी द्वन्द्वात्मक गीतो को श्रेष्ठतम स्थान दिया है अत सुख दुख, हर्ष विषाद आदि मानसिक द्वन्द्वो म ही कवि उलझा रहा है। [1] दिनकरजी इस भौतिक जगत के शात पथिक बनकर सरसरतापूर्वक प्रत्येक क्षण को व्यतीत करने के लिए आकुल प्रतीत होत हैं—

'यात्री हू अति दूर देश का पल भर यहा ठहर जाऊ।
थका हुआ हू सुदरता के साथ बठ मन बहलाऊ॥[2]

सामधेनी—यह रचना उस समय हुई जब सवत्र क्रान्ति की ध्वनि गूज रही थी। इसीलिए इस कृति की रचनाओ का मूल स्वर क्रान्ति का ही है। सन १९४२ का भारत छोडो आन्दोलन घटित हो चुका था। दश के नतागण कठिन यातनाए झेल रहे थे। तब कवि उग्र कठ स उद्घोष करता है— प्यारे स्वदेश के हित अगार मागता हू। कवि की क्रांतिमूलक भावनाए शन शन क्रान्ति स शान्ति की ओर अग्रसर होने लगी। कलिंग विजय ऐसी कविता है जिसम अशोक के माध्यम से शांति की कामना करता हुआ कवि अपनी वाणी को करुणा स भिगोता ह। यथा—

शत्रु हो कोई नही हो आत्मवत ससार।
पुत्र सा पशु पक्षिया को भी सकू कर प्यार। [3]

धूप छाह—इसमे रवीन्द्र एव विदेशी कवियो की प्रेरणा लेकर बालोपयोगी कविताए सगहीत की है। [4] कवि सौन्दय को शक्ति का अनुचर मानता है और कहता है कि जो बलवान् है वही सुदर भी है—

है सौदय शक्ति का अनुचर जो है बली वही है सुन्दर।

बापू—इस सग्रह म राष्ट्रपिता पूज्य बापू को श्रद्धाजलि अर्पित की गयी है। यथा—

तू कालोदधि का महास्तम्भ आत्मा के नभ का तुग केतु।
बापू तू मत्य अमत्य स्वग-पृथ्वी भू नभ का महासतु। [5]

इतिहास के आसू—इसम पाटलीपुत्र मगध मिथिला वशाली राजस्थान आदि के अतीत का बखान कर नवजागरण का भावना उद्दीप्त करना कवि का अभिप्रेत है। कवि अतीत क गौरव की याद दिला कर पुनरुत्थान के लिए प्रेरित करता है—

करना हो साकार स्वप्न को तो बलिदान चढाओ।
ज्योति चाहत हो तो पहले अपनी शिखा जलाओ।'[6]

१ दिनकर की काव्य भाषा पृ० ४३
२ द्वन्द्वगीत पृ २४
३ सामधनी—कलिंग विजय शीर्षक कविता
४ दिनकर की काव्य भाषा पृ ५४
५ बापू १४वा पद्य
६ इतिहास के आसू मगध महिमा शीर्षक रचना

धूप और धुआ—इसके नामकरण के विषय म कवि ने स्वय लिखा है कि—'स्वराज्य स फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध ज म हुए असतोष का धुआ य दोनो ही इन रचनाओ म यथास्थान प्रतिबिम्बित मिलेगी। अतएव जिनकी आखें धूप और धुआ देख रही है उनके लिए यह नाम कुछ निरथक नही होगा।'[1] धूप और धुआ की रचना स्वतत्रता राष्ट्र कल्याण, सेनानी की वीर भावना तथा बलिदानियो के प्रति श्रद्धा भाव से ओत प्रोत हैं। यथा—

मा का अचल है फटा हुआ, इन दो टुकडो को सीना है।
देखें देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है।'[2]

नीम के पत्ते—इस सग्रह म कवि की भावनाए एक बार पुन हुकार उठी हैं। इनकी हुकार के पात्र हैं—विलासी नेता जो आराम-तलब जीवन जी रहे है। आजादी की पहली वषगाठ पर कवि नेताओ के जीवन का व्यग्यपूण कटु यथाथ शैली मे चित्रण करता है—

'आजादी खादी के कुरते की एक बटन
आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई।
फैशन वालो के लिए नया फशन निकला,
मीटर मे बाधा तीन रग वाला चिथडा।
ओ गिनो कि आखें पडती है कितनी हम पर
हम पर यानि आजादी के पैगम्बर पर।'[3]

नये सुभाषित—इसमे जीवन की गम्भीर अनुभूतिया एव निष्कर्षों की मार्मिकता को अत्यत सरल ढग से व्यक्त किया गया है—

पुरुष का प्रेम तब उद्दीप्त होता है
प्रिया जब अक म होती है।
प्रिया का प्रेम स्थिर अविराम होता है
सदा बढता प्रतीक्षा मे।'[4]

नीलकुसुम—इसके विषय यथा मे कवि प्रयोग। मुख रहा है। इस सग्रह का मूल स्वर कल्पना लोक स धरती पर आगमन का है। रगीनियो के स्थान पर ठोस धरती ही कवि का अभीष्ट है। इसम अभिव्यजना भाग बौद्धिकता के पाश्ववर्ती होते हुए भी देशप्रेम की कामना यहा भी बलवती हो उठी है—

"आया हू बासुरी बीच उदगार लिए जनगण का
पग पर तेरे खडा हुआ हू भार लिए त्रिभुवन का।'[5]

१ धूप और धुआ भूमिका से उद्धत
२ वही प्रकाशनीय नामकरणना
३ नीम के पत्ते 'पहली वर्षगाठ' शीर्षक रचना
४ नये सुभाषित—प्रेम पृ० ४
५ नीलकुसुम— व्याल विजय स उद्धत

दिल्ली—इसमे दिल्ली की शान शौकत पर कटु व्यग्य किया गया है। इस कविता के द्वारा दिनकर की निर्भीकता, स्पष्टवादिता आदि प्रकट हुए है—

'तो होश करो दिल्ली के देवो होश करो
सब दिन तो यह मोहिनी न चलने वाली है।
होती जाती है गम दिशाओ की सासें,
मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली।'[१]

परशुराम की प्रतीक्षा—इस पाच खण्डो वाली लम्बी कविता मे कवि ने गरजते भारत के आक्रोशपूर्ण स्वर को वाणी दी है। *यह चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर* लिखित रचना है। कवि चीनी आक्रमण के बाद मिले पराभव स तिलमिला उठा है। वह देश की शान्ति, अहिंसा विनय और त्यागशील वृत्तियो का विरोध करता है। क्रान्ति की आग बरसाता है। पौराणिक परशुराम यहा युग पुरुष' के रूप म चित्रित है। इस रचना के हर छद म शत्रुओ को परास्त करने वाला तेजस्वी भाव है। यह सग्रह ओज उत्तेजना तथा शौर्य जैसे तत्त्वो से परिपूर्ण काव्य है। यथा—

गरजो, अम्बर को भरो स्वरोच्चारो स
क्रोधान्ध शेर हाको से हुकारो से।
यह आग मात्र सीमा की नही लपट है
मूढ स्वतन्त्रता पर ही आया सकट है।[२]

कोयला और कवित्व—इस कृति म रचनाए अतुकान्त और नये विचारो की परिचायिका है। इसम कवि ने कर्म और धर्म दोनो के सामजस्य पर बल दिया है—

इसीलिए चल दल समान रह रह डोला करता हू।
जब होता हू जहा उसी ध्रुव से बोला करता हू।'[३]

आत्मा की आँखें—इस सग्रह की रचनाए रहस्यवादी प्रगतिवादी, कामवादी विचारधाराओ से प्रेरित है। इस कविता सग्रह की रचनाओ म डी० एच० लारेंस की कविताओं का भावानुवाद प्रस्तुत किया है।[४] काम को कवि सक्रम नही मानता। वह अन्तत सयम पर बल देता है। यथा—

मन को बाधे रहो तो शरीर स्वच्छ रहेगा।
काम का प्रकाश निधूम और प्रत्यक्ष रहेगा।[५]

हारे को हरि नाम—इसम अत्यन्त गूढ दाशनिक रचनाए हैं। कवि ने ससार के मिथ्यात्व एव ईश्वर के सत्य स्वरूप की महिमा का बखान किया है। पार्थिव शरीर को पत्ते की तरह नश्वर कहा गया है—

१ दिल्ली—भारती का यह रेशमी नगर
२ परशुराम की प्रतीक्षा खण्ड—३
३ *कोयला और कवित्व—निश्चय*
४ आत्मा की आखें—भूमिका पृ० ४

"जीवन ओज है
शरीर केले का पत्ता है।
इस पत्ते पर आदमी
भोजन तो बड़े प्रेम से करता है
लेकिन खाना खत्म होते ही
वह उसे फेंक देता है।
जूठा पत्ता भी कभी कोई
सभाल कर धरता है।"[1]

मुक्ति तिलक—इन रचनाओं में महापुरुषों के प्रति श्रद्धापरक कविताएं हैं। कुछ राष्ट्रीयता से सम्बन्धित हैं तो कुछ पत्रात्मक हैं। राजेन्द्र बाबू के प्रति कवि का श्रद्धामय होना स्वाभाविक ही था—

'मानवेन्द्र राजेन्द्र हमारा अवतार है बना है।
तप पूत आलोक देश माता का वन्दन प्रबल है।'[2]

कुरुक्षेत्र—कुरुक्षेत्र की मुख्य समस्या युद्ध से ही सबंधित है। इसका य भाग्य पर यम की तथा निवृत्ति और शांति पर शांति की विजय दर्शायी गयी है। 'समाज में युद्ध का निषेध शांति की स्थापना से ही हो सकता है और शांति स्थापन के लिए आवश्यक है कि उपलब्ध साधनों और सुख सुविधाओं का समान विभाजन हो। किन्तु स्वार्थलोलुप वर्ग साधनों के सम विभाजन का बाधक है। समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग हैं। इनमें शोषित वर्ग जब तक शक्तिशाली बनकर शोषकों से संघर्षरत नहीं होता तब तक स्थायी शांति स्थापित नहीं हो सकता।'[3] इसीलिये कवि ने भी क्रांतिपूर्ण मुद्रा में कहा है कि—

रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको
वृक व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो।[4]

इसके अतिरिक्त "कुरुक्षेत्र में जहां एक ओर भाग्य भगवान मोक्ष निवृत्ति संन्यास आदि परम्परागत रूढ़ विचारों एवं आध्यात्मिक निष्ठाओं का खण्डन किया गया है, वहीं सांसारिक जीवन में आसक्ति तथा मानवीय जीवन मूल्यों (यथा— त्याग तप स्नेह, बलिदान विश्राम आदि) के प्रति अनन्य आस्था मण्डित की गयी है। नियति प्रकृति एवं ज्ञान विज्ञान के लोक मंगलकारी रूप को ही वर्ण्य कहा गया है।"[5]

रश्मिरथी—इस प्रबन्ध काव्य में पौराणिक कर्ण को काव्यनायक बनाया है

१ हारे को हरि नाम— जूठा पत्ता पृ० २१
२ मुक्ति तिलक—'पटना जेल की दीवार' से उद्धृत
३ डा० देवीप्रसाद गुप्त—साहित्य सिद्धान्त और समालोचना पृ० १२८
४ कुरुक्षेत्र—सर्ग ७ पृ० ११
५ डा० देवीप्रसाद गुप्त—आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य पृ० २०७

जिसके माध्यम से शौर्य त्याग कृतज्ञता आदि गुणों का आदर्श जनता के समक्ष प्रस्तुत हुआ है। सच तो यह है कि—रश्मिरथी में कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक ओर परम्परा पोषित एवं जर्जरित रूढ़िवादी मान्यताओं का खण्डन किया गया है तो दूसरी ओर युगसापेक्ष प्रगतिशील जीवन मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया गया है। उसमें सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान मर्यादा और जातिवाद के दम्भ की भर्त्सना की गयी है। [1] कवि जाति-कुल के अहंकार को गलत सिद्ध कर दानशीलता गुरु भक्ति एवं त्याग की भावना को महत्व देता है—

नर समाज का भाग्य एक है
यह श्रम वह—भुजबल है
जिसके सम्मुख झुकी हुई—
पृथ्वी विनीत नभतल है।
जिसने श्रम बल किया उसे
पीछे मत रह जाने दो
विजित प्रकृति से सबसे पहले
उसको सुख पाने दो। [2]

उर्वशी—इसके कथानक के सूत्र वेद पुराण *महाभारत और भागवत आदि में* निहित हैं। इस रचना पर कालिदास के विक्रमोर्वशीय का भी पर्याप्त प्रभाव है। 'उर्वशी मूलतः नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धों का विवेचक काव्य है। इन्हीं सम्बन्धों का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपों का निरूपण भी किया है। [3] वस्तुतः *उर्वशी महाकाव्य में आद्यान्त कवि ने नारी की गौरव गरिमा को प्रतिष्ठित करने का* अभिनन्दनीय प्रयास किया है। वास्तव में उर्वशी महाकाव्य नारी की महिमा का काव्य है। उसमें परम्परागत और प्रगतिशील सन्दर्भों में एक साथ नारी का स्वरूप विश्लेषण हुआ है। नारी जाति के भविष्य के प्रति भी कवि मंगलाकांक्षी है। [4] मानव की महत्ता को कवि ने स्वीकार करते हुए कहा है कि—

नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चलकर
नये मनुज नव प्राण दृश्य जग में आते रहते हैं।
नारी ही वह कोष्ठ देव दानव मनुष्य से छिपकर
महाशून्य चुपचाप जहाँ आकार ग्रहण करता है।'[5]

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि दिनकर की काव्य कृतियों में नवीन विषय चयन किया गया है। पौराणिक पात्रों तथा कथानक को नवीन साँचे में ढाला गया है। जो

१ डा० देवीप्रसाद गुप्त—हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य पृ० ३६५
२ रश्मिरथी पृ० १०८
३ डा० देवीप्रसाद गुप्त—स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य (पूर्वार्द्ध) पृ० २२७
४ वही पृ० २४२
५ उर्वशी पृ० ११३

कवि की क्रान्तिमत दृष्टि का परिचायक है। दिनकर का काव्य क्रान्ति और पौरुष-दर्शन और मनोविज्ञान तथा माधुर्य एवं प्रगतिशीलता का असाधारण समन्वय प्रस्तुत करता है।

काव्य रूपात्मक प्रयोग स्वातन्त्र्य

दिनकर की क्रान्तिमय चेतना जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सजग रही है। उसी प्रकार साहित्य की परम्पराओं के संशोधन तथा रूढ़ियों के परिवर्तन में भी कवि ने नवीनता दिखाई है। कवि ने काव्य-पक्ष को नया मोड़ देने का प्रयत्न किया है। यही उनकी साहित्यिक क्रान्ति चेतना उजागर हुई है।[1]

दिनकर ने काव्य रूपों के निर्माण के लिए परम्परागत रूढ़ियों का अंध अनुपालन नहीं किया। स्वच्छन्द कवि की भांति दिनकर अपने काव्यों की रचना करते चले गये। उन्हें तो केवल अपने उन्मुक्त भाव व्यंजित करने थे न कि कला कला के लिए भावना का प्रदर्शन करना था। काव्याचार्यों द्वारा निरूपित महाकाव्यों के लक्षणों का भी कवि ने यथावत पालन नहीं किया।

श्री रामधारीसिंह दिनकरजी ने तीन प्रबन्ध काव्य लिखे हैं—कुरुक्षेत्र रश्मिरथी और उर्वशी। इन प्रबन्ध काव्यों की रचना में अपने महाकाव्य के लक्षणों पर विशेष ध्यान नहीं दिया वरन भाव प्रसंग पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित रखी है। इसीलिए हिन्दी के समीक्षकों में इनके महाकाव्यत्व पर मतभेद है।

कुरुक्षेत्र

'कुरुक्षेत्र' काव्य को महाकाव्य के रूप में स्वीकारने में कुछ विद्वानों ने असमर्थता प्रकट की है। डा० प्रतिपालसिंह इसे खण्ड काव्य मानते हैं।[2] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र इसे एकार्थ-काव्य मानते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इसे साकेत और 'कामायनी' के पश्चात प्रतिनिधि रचना मानते हैं जिसका संकेत प्रबन्ध काव्य ही माना जा सकता है।[3] डॉ० नगेन्द्र इसे एक 'पौराणिक प्रबन्ध काव्य' मानते हैं। उनके अनुसार 'कुरुक्षेत्र' दिनकर की प्रौढ़तम काव्य-कृति है—पारिभाषिक रूप में तो इसे मात्र सगबद्ध पौराणिक प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है परन्तु न तो यह पौराणिक ही है और न प्रबन्ध काव्य ही यह तो अभी समाप्त होने वाले यूरोप के द्वितीय महा-समर से प्रेरित एक लम्बी चिन्ता प्रधान कविता है।[4] सरोजिनी मिश्रा के मतानुसार "आधुनिक युग के महाकाव्यों में कुरुक्षेत्र का नाम भी उल्लेखनीय है।"[5]

१ युगचारण दिनकर पृ० ८३
२ बीसवीं सदी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य पृ० २६
३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० १३२
४ डा० नगेन्द्र—विचार और विवेचन पृ० १२८
५ सरोजिनी मिश्रा—साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त पृ० २५२

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी इस मत को स्वीकारा है—"यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से कामायनी और कुरुक्षेत्र दोनों में ही महाकाव्य की अनेक विशेषताएं नहीं मिलती, किन्तु महाकाव्य की सी महत्ता और उदात्तता अवश्य उनमें है।[1] कुरुक्षेत्र को प्रबन्ध कवि ने स्वयं भी कहा है— मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था किन्तु तब यह रचना शायद प्रबन्ध के रूप में न उतर कर मुक्तक बन गयी होती।"[2] दूसरी तरफ कवि स्वयं कहते हैं— "तो भी यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी।"[3]

कुरुक्षेत्र का कथानक सात सर्गों में विभक्त है जबकि महाकाव्य आठ सर्गों से कम नहीं होना चाहिए। प्रथम सर्ग के आरम्भ में मंगलाचरण भी नहीं है। प्रथम सर्ग में सम्पूर्ण प्रबन्ध की प्रस्तावना है। छठे सर्ग में कवि समस्याओं का समाधान खोज रहा है। सप्तम सर्ग में सभी आवेश आवेग समाधान पाते हैं। परम्परावादी प्रबन्ध काव्यों की तरह यहाँ कथा का विकास अथवा चरित्र चित्रण कवि का ध्येय नहीं रहा है। केवल विचार सूत्र को आगे बढ़ाने के लिए ही विभिन्न सर्गों की योजना हुई है।"[4] छन्द की दृष्टि से भी शास्त्रीय बन्धन कवि को स्वीकार्य नहीं रहा।[5] 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग के आरम्भ में मुक्त छंद का प्रयोग किया गया है परन्तु आगे चलकर तुकान्त छन्द का प्रयोग किया गया है। कवि ने सभी दृष्टियों से कुरुक्षेत्र की रचना नवीनतम काव्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में करके अपनी क्रान्तिकारी रचना दृष्टि का परिचय दिया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र एक युग काव्य है। इसमें कवि ने विविध रसों की अभिव्यक्ति करके इस काव्य को सर्वजन हितकारी एवं सर्वहृदय आह्लादकारी बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है तथा प्राचीन एवं नूतन भावों, विचारों अनुभूति एवं अभिव्यक्ति प्रणालियों से ओत प्रोत होने के कारण यह काव्य युग-काव्य बन गया है।[6] दिनकर की काव्य चेतना साहित्यिक क्रान्ति के पथ पर अग्रसर होकर नवीनतम काव्यात्मक प्रयोग करने में सक्षम हुई है।

रश्मिरथी

'रश्मिरथी' में सामान्यतः महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह दिखाई देता है। छंद की व्यवस्था महाकाव्योचित है क्योंकि छन्द विधान शास्त्रीय मर्यादाओं में बंधा हुआ है। 'शास्त्रीय दृष्टि से आश्रय के असम्मोह अध्यवसाय भय विनय यत्न

१ डा० गणपतिचन्द्र गुप्त—साहित्यिक निबन्ध पृ० १४७
२ कुरुक्षेत्र—निवेदन पृ० १
३ वही पृ० १
४ युगचारण दिनकर पृ० २६
५ कवि दिनकर—व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० २७६
६ दिनकर की काव्य भाषा पृ० १३

पराक्रम, शक्ति, प्रताप, प्रभाव आदि गुण होते है।"[1] रश्मिरथी में कर्ण के काव्य मे दृढ़ता साहस, तेज, प्रभाव, प्रतिज्ञा मन की दृढ़ता विवेक विश्वास तथा जन-कल्याण की प्रवृत्ति आदि गुण मिलते है। यथा—

"हृदय को निष्कपट पावन क्रिया का
दलित-तारक समुद्धारक त्रिया का,
बड़ा बेजोड़ दानी था सत्य था
युधिष्ठिर ! कर्ण का अदभुत हृदय था।"[2]

रश्मिरथी के सम्बन्ध में डा० सत्यकाम वर्मा का मत है कि—'कुरुक्षेत्र के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों मे केवल महाकाव्य ही नहीं, बल्कि कवि की दार्शनिक, सांस्कृतिक, कवित्वमय धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवन दर्शन हुंकार से जागा है और जिसकी पूर्णता परशुराम की प्रतीक्षा में हुई उसी का केन्द्रबिन्दु यह रश्मिरथी' है।'[3] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि—रश्मिरथी प्रबन्ध काव्य में दिनकरजी ने महाकाव्योचित समस्त शास्त्रीय लक्षणों को प्रतिपादित किया है।

उर्वशी

उर्वशी प्रबन्ध काव्य की एक निश्चित योजना है। प्रथम तथा द्वितीय सर्गों में कवि आख्यान के सूत्रों को लेकर चला है। कामाध्यात्म की समस्या की स्थापना के साथ कथा को गति प्राप्त होती है। तीसरे अंक में उर्वशी तथा पुरुरवा का मिलन है। पाँचवें सर्ग में कथानक चरम सीमा पर पहुँचता है। इस काव्य की रचना में प्रबन्ध काव्य और नाटक के तत्व मिले जुले रूप में अंकित हैं। वस्तुतः 'उर्वशी' भी प्रबन्धत्व की दृष्टि से कुरुक्षेत्र की भाँति एक नया प्रयोग ही माना जायगा, क्योंकि इसमें न तो आठ सर्ग हैं न मंगलाचरण और न ही कवि केवल चरित्र चित्रण में ही लगा है। कवि ने आख्यान और दर्शन को प्रबन्ध, प्रतीक और नाट्यता के माध्यम से व्यक्त करना चाहा है इस प्रकार के प्रयोगों की सीमा में भी यह काव्य रूप आकर्षक और सफल बन पड़ा है।[4] हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की रचनाधारा में उर्वशी में किये गये शिल्पगत प्रयोग दिनकर की विलक्षण रचना सामर्थ्य के परिचायक हैं। इस प्रकार की काव्य रूपात्मक प्रयोगधर्मिता दिनकरजी की साहित्यिक सरचना क्रान्ति की ही अभिव्यंजक है।

१ दिनकर के वीर काव्य पृ० ३८
२ रश्मिरथी पृ ११६
३ डा० सत्यकाम वर्मा—जनकवि दिनकर पृ० ६३
४ युगचारण दिनकर पृ० २६३

भाषात्मक संरचना का स्वरूप

दिनकर की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है—अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता। इस अभीष्ट की प्राप्ति उन्होंने सबल, ऋजु, सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दों के प्रयोग द्वारा की है।[1] काव्य के भाव के अनुसार ही दिनकरजी ने शब्दों का सुविचारित चयन किया। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि — "शब्द तो मेरे भी अनेक होते थे और मुझे भी उनके बीच चुनाव करना पड़ता था किन्तु शब्दों का चयन मैं उनके रूप नहीं सामर्थ्य के कारण करता हूँ।[2] इसमें सन्देह नहीं कि दिनकरजी का हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी भारती उनके हृदय में विराजित है यही कारण है कि कहीं भी भाषा शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होती है। तत्सम शब्दों सुपुष्ट अवसरानुकूल भाषा उनकी लेखनी से सहज ही निःसृत हुई है।'[3] विचार और भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करना दिनकरजी की अपनी विशेषता है। उनका शब्द समूह व्यापक है। दिनकरजी के काव्य में प्रयुक्त शब्द समूह की सूची इस प्रकार है—

१ संस्कृत के तत्सम एवं अर्धतत्सम शब्द
२ पूर्वजा भाषाओं से विकसित शब्द
३ जन-साधारण में प्रचलित संस्कृत के तद्भव शब्द
४ समीपस्थ क्षेत्रीय बोलियों के शब्द
५ विदेशी भाषाओं के शब्द
६ देशज एवं अनुकरणात्मक शब्द
७ स्वनिर्मित शब्द

तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग

'भैया लिखा दे एक कलम खत मो बालम के जोग
चारों कोने खेम-कुशल माझे ठाँ मोर वियोग।[4]

तत्सम शब्दों का प्रयोग

'मैं कला चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत
रेखाओं में अंकित कर रंगों के उभार,
भंगिमा तरंगित वर्तुलता वीथियाँ लहर
तन की प्रकान्ति रंगों मे लिए उतरती हूँ।'[5]

१ युगचारण दिनकर पृ० २१८
२ चक्रवाल पृ० २६
३ डा० विमलकुमार जैन—महाकवि दिनकर—उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ, पृ २४२
४ हुंकार पृ० ३२
५ उर्वशी, पृ० ६७

"ज्योतिधर कवि म ज्वलित सौर मण्डन का
मेरा शिखण्ड अरुणाभ, किरीट अनल का। [1]

विदेशी शब्द प्रयोग

उर्दू शब्दावली

मैंने देखा आबाद उन्हें जो साथ जीस्त के जलते थे
मंजिल मिली उन वीरों को जो अगारों पर चलते थे। [2]

× × × ×

'जिनमे बाकी ईमान, अभी वे भटक रहे वीरानो म
दे रहे सत्य की जाच, आखिरी दम तक रेगिस्तानो म।' [3]

× × × ×

'बिक रही आग के मोल आज हर जिन्स मगर
अफसोस आदमियत की ही कीमत न रही।' [4]

अग्रेजी शब्द

एक कबिनेट के अनेक यहा मुख हैं
डेमोक्रेसी दूर करो हम तानाशाह दो।
चिन्तन म सोशलिस्ट गवाँ है,
कम्युनिस्ट और कॉंग्रेसी म क्या फर्क है।
रनवे का स्लीपर उठाय कहाँ जाता ह। [5]

दिनकरजी की भाषा विभिन्न शब्दशक्तियो से युक्त है। रेणुका हुकार और सामधेनी म अभिधा शब्दशक्ति अधिक प्रयुक्त हुई है जबकि परवर्ती काव्यो म तीनों लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग अधिक हुआ है। तीनो शब्दशक्तियो का सम्मिलित रूप हम 'परशुराम की प्रतीक्षा' म देखने को मिलता है। यथा—

"है जिन्हे व्रत उनसे जन्त कहते हैं
थाना शूरो को देख सन्त कहते हैं
तुम तुडा दात क्या नही पुण्य पाते हो ?
यानि तुम भी क्यो मन्द न बन जाते हो ?
पर कौन शूर मडो की बात सुनेगा
जिन्दगी छोड मरन की राह चुनेगा। [6]

१ हुकार पृ० ४
२ द्वन्द्वगीत पृ० ५३
३ वही पृ० ५३
४ नीम के पत्ते पृ० १८
५ परशुराम की प्रतीक्षा पृ० ६१ ६२
६ वही पृ० २७

निष्पत कहा जा सकता है कि दिनकरजी राष्ट्रीय कवि होने के कारण राष्ट्र की जनता के कवि थे। भाषा में क्रांति लाने के लिए सभी प्रकार के शब्दों को उन्होंने अपने काव्य में स्थान देकर नवीन रूप प्रदान किया। दिनकरजी ने जनता के भावों के अनुकूल ही शब्दों का चयन किया है। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दों में—'दिनकरजी की भाषा नीति का सबसे प्रथम प्रमुख और अनिवार्य अनुबंध है—उसकी भावानुकूलता। जन जीवन से सम्बन्धित प्रतिपाद्य के अनुकूल भाषा निर्माण के लिए जैसे—उर्दू फारसी अंग्रेजी और संस्कृत के प्रचलित शब्दों को वे साथ साथ प्रयोग करते रहे वैसे ही अंग्रेजी भाषा के शब्द भी आवश्यकता पड़ने पर वे उसी प्रकार अपनाते हैं। जब कि वे विदेशी भाषा के शब्द न होकर हिन्दी के अपने शब्द हैं।'[1] दिनकर के काव्य में एक ओर व्यंजना और लक्षणा को सामूहिक रूप से आक्रोश की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है तो दूसरी ओर केवल लक्षणा के प्रयोग से विशेष रस की अनुभूति कराई गयी है।

शिल्प संरचना के अन्य तत्व

अलंकार योजना—दिनकरजी ने विभिन्न रचनाओं में शिल्पिक संरचना तत्वों में भी अनेक प्रयोग किये हैं। उन्होंने अलंकारों को केवल बाह्य साधन न मान कर उसे काव्य के आंतरिक विकास में सहायक माना है।[2] उनके अनुसार—'अलंकार शब्द से बस तो अनावश्यक बनाव सिंगार की ही ध्वनि निकलती है किन्तु कविता में अलंकारों के प्रयोग का वास्तविक उद्देश्य अतिरंजन नहीं वस्तुओं का अधिक से अधिक सुनिश्चित वर्णन ही होता है। साहित्य में भी जब हम संक्षिप्त और सुनिश्चित होना चाहते हैं तभी रूपक की भाषा हमारे लिए स्वाभाविक हो उठती है। रूपकों पर सम्पूर्ण अधिकार को अरस्तू ने कवि प्रतिभा का सबसे बड़ा लक्षण कहा है। और यीट्स का विचार था कि परिपक्व ज्ञान बराबर रूपकों में व्यक्त होता है और श्रेष्ठ कविता की पहचान यह है कि उसमें उगने वाले चित्र स्वच्छ और सजीव होते हैं। चित्र भी कविता के साधन होते हैं साध्य नहीं। शक्तिशालिनी कविता केवल चित्र दिखलाकर संतुष्ट नहीं हो जाती वह चित्रों के भीतर से कुछ और दिखलाना चाहती है।'[3] काव्य शिल्प के सम्बन्ध में कवि की धारणा निश्चय ही क्रान्तिमत है।

'सामधेनी' और 'नीलकुसुम' में अप्रस्तुत योजनाओं में कहीं-कहीं नये प्रयोग मिलते हैं। जैसे—

'वृद्ध सूर्य की आँखों पर
माड़ी सी चढ़ी हुई है

१ युगचारण दिनकर पृ० २२३
२ युगचारण दिनकर, पृ० २६०
३ चक्रवाल—भूमिका पृ० ७३

दम तोडती हुई बुढिया सी
दुनिया पडी हुई है।"[1]

× × × ×

'अब तो नही कही जीवन की आहट भी आती है,
हवा दम की मारी कुछ चल कर ही थक जाती है।'[2]

निम्नलिखित उद्धरण म उपमान एकदम नए हैं—

'मजे मे रात भर घूमो कभी दायें कभी बायें
उमडती बाढ म ज्यो नाव की डागी निकलती है।
घरो के पास स होकर बचा कर पेड पौधा को,
कि जसे पवता की गोद म नदियाँ बहा करती,
कि जस टापुओ के बीच म जलयान चलते है,
कि जस नाव वनिस म गहो के बीच फिरती है।'[3]

× × ×

वसुधा जो हर बार काल का शरबत बन जाती है,
महा प्रलय के प्लावन मे शक्कर समान घुल मिलकर।"[4]

× × ×

'वह मनुष्य मर गया
शेष जो है लक्ष्मी का नया जार है।'[5]

× × ×

कहो कि जैस उडी कलगियाँ
जस उडे जरी के जामे
बेपनाह जिस तरह रहे उड
राजाओं के मुकुट हवा म
उसी तरह ये नोट तुम्हारे
पापी उड जान वाले हैं।'[6]

रूमानी अप्रस्तुत-योजना

'खुली नालिमा पर विकीर्ण तारे या दीप रहे हैं
चमक रहे हों नील चीर पर बूट ज्यो चाँदी के,

१ सामधनी पृ० १६
२ वही पृ० २०
३ नीलकुसुम पृ० १४
४ वही पृ २४
५ वही पृ० ६५
६ वही पृ० ६७

या प्रशान्त निस्सीम जलधि मे जसे चरण चरण पर,
नील वारि को फोड ज्योति के द्वीप निकल आए हो।"[१]

× × ×

'महगी आजादी की यह पहली सालगिरह
रहन दो बापू की अर्थी अब दूर नही।
और धूमधाम स नही मनाओगे क्या तुम
कुछ ही वर्षों मे दशक चार बाजारी का ?
छल छदम, कपट का, राजनीति की तिकडम का,
क्रम क्रम स उत्सव इनका भी होना चाहिये।

× × ×

मन्त्री के पावन पद की यह शान,
नही दीखता दोष कही शासन म।
भूतपूव मन्त्री की यह पहिचान है
कहता है सरकार बहुत पापी है।'[३]

व्यतिरेक अलकार

किन्तु आपकी कीर्ति चादनी फीकी हो जायेगी,
निष्कलक विधु कहा दूसरा फिर वसुधा पायगी।[४]

पर्यायोक्ति अलकार

'एक बीज का पख तोड कर, करना अभय अपर को,
सुर को शोभे भले, नीति यह नही शोभती नर को।
यह तो निहत शरम पर चढ आखेटक पद पाना है
जहर पिला मगपति को उस पर पौरुष दिखलाना है।'[५]

अपह्नुति अलकार

'भरी सभा म लाज द्रौपदी की न गई थी लूटी।
वह तो यहो कराल आ गयी निमय होकर फूटी।'[६]

+ × ×

१ उवशी पृ ८
२ नीम के पत्त पृ० १६
३ नये सुभाषित पृ ४
४ रश्मिरथी प० ५३
५ वही प० ६३
६ कुरुक्षेत्र प० ४८

और कभी यह भाव गोद मे पडी हुई मैं जसे
युवती नारी नही, प्रार्थना की कोई कविता हू ।'[1]

उल्लेख अलकार

"मरे हु ो की ग्लानि जीविता को रस की ललकार,
दिल्ली वीर विहीन देश की गिरी हुई तलवार।
बरबस लगी देश क होठो से यह लगी जहर की प्याली
यह नागिनी स्वदेश हृदय पर गरल उडेल लौटन वाली।
प्रश्नचिह्न भारत का, भारत के बल की पहिचान
दिल्ली राजपुरी भारत की, भारत का अपमान।'[2]

अतिशयोक्ति अलकार

'मेरे अश्रु ओस बन कर कल्पद्रुम पर छायेंगे,
पारिजात वन के प्रसून आहो स कुम्हलायेंगे।'[3]

दृष्टात अलकार

'दीपक के जलते प्राण दिवाली तभी सुहावन होती है
रोशनी जगत को देने को अपनी अस्थियां जलाता चल।'[4]

छन्द योजना

प्रस्तुत सन्दभ मे दिनकरजी का विश्वास है कि-- 'जिस युग मे हम जी रहे हैं उसका सगीत टूट गया है। इसका कारण यह है कि उन छन्दो मे काव्य रचना का मैं अभ्यासी था वे छन्द अब मुझे अधूरे लगने लगे हैं। यदि मेरा आत्म विश्वास गलत या अतिरंजित नही कि मेरे हृदय का चेतन यन्त्र अभी काल के हृदय की धडकनो को पकड सकने मे समर्थ है, तो मेरा अनुमान है कि जो छन्द सगीत का अपील करते हैं उनके द्वारा वतमान युग का टूटा हुआ सगीत पकडा नही जा सकता।'[5] आधुनिक युग के काव्यो के लिए नये छन्दो का प्रयोग ही कवि का ध्येय है। उनका विचार है कि अब वे ही छन्द कवियो के भीतर स नवीन अनुभूतियो को बाहर ला सकेंगे, जिनमे सगीत कम सुस्थिरता अधिक होगी जो उडान की अपेक्षा चिन्तन के अधिक उपयुक्त होंगे। हमारी मनोदशाएं परिवर्तित हो रही हैं और इन मनोदशाओ की अभिव्यक्ति क

१ उर्वशी पृ० २४
२ दिल्ली पृ० १०
३ उर्वशी पृ २५
४ नीलकुसुम पृ ६
५ चक्रवाल भूमिका पृ० ७०

छन्द नही कर सकेंगे, जो पहल मे चले आ रहे हैं। [1]

दिनकरजी के का य म एकदम नये छन्द उवशी' म प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

' चूमता हू दूब को जल को प्रसूनो पल्लवो को
वल्लरी की बाह भर उर स लगाता हू
बालको सा मैं तुम्हारे वक्ष म मुह को छिपा कर
नीद की निस्तब्धता मे डूब जाता हू।' [2]

'प्रीति नामक कविता का छन्द दिनकरजी का स्वनिर्मित छन्द है—

' प्रीति न अरुण साझ के घन सखि।
पल भर चमक बिखर जाते जो
मरा कनक गोधूलि लगन सखि।
प्रीति नील, गम्भीर गगन सखि।
चूम रहा जो विनत धरणि को
निज सुख म नित मूक मगन सखि। [3]

निष्कर्ष

इस प्रकार भाषात्मक सरचना के अनुक्रम म दिनकरजी ने नये नये का यात्मक प्रयोग किये ही थे अलकार योजना उपमान विधा छन्द योजना प्रतीकात्मक प्रयोग बिम्ब सृष्टि आदि के क्षेत्र म भी प्रयोग किये हैं। दिनकर की का य भाषा एव अ य शैल्पिक प्रतिमानो का अध्ययन करने वाले विद्वानो ने इस दृष्टि म उनके का य की नवीनता को सदव ही सराहा है। हारे को हरिनाम म नयी कविता की रचना शैली को अपनाने वाले कवि वही हैं जिन्होने कुरुक्षेत्र रश्मिरथी, उवशी जस प्रब ध का यो की सरचना म परम्परित का यशास्त्रीय मानदण्डो को अपनाया था। दिनकर की प्रयोगधर्मिता अ तत उनकी क्रान्तिमन्त साहित्यिक चतना की ही परिचायक है।

१ युगचारण दिनकर प १८१
२ उवशी प ४८
३ रसवन्ती प २

उपसहार

प्रस्तुत लघु शोध प्रब ध के विगत सात अध्याया म दिनकरजी के काव्यों के माध्यम म विकसित क्रान्तिमत चेतना के मूल्याकन म हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि वे राग और आग दोना के कवि हैं। दिनकरजी ने अपने प्रारम्भिक जीवन म ही सघर्षों का सामना करना आरम्भ कर दिया था। द्वन्द्व और सघर्ष उनकी रचनाधर्मी चेतना के अभिन्न अग बन गये। इसलिए वे सफलतापूर्वक सघर्ष को अपनी काव्य कृतियों के माध्यम से चित्रित कर सके। उनके प्रारम्भिक दौर की रचनाओं म रेणुका, हुकार द्वन्द्वगीत और सामधेनी क्रान्तिमत चेतना का आह्वान करने वाली काव्यकृतियाँ हैं। 'कुरुक्षेत्र और 'रश्मिरथी नामक प्रबन्ध काव्यों म इसी चेतना की प्रौढतम अभिव्यक्ति हुई है। दिनकरजी की क्रान्तिमनता का चरम निदर्शन परशुराम की प्रतीक्षा नामक लम्बी कविता म हुआ है। इसी के साथ साथ रसवन्ती नीलकुसुम' उर्वशी जैसी काव्यकृतियों म वे अपनी राग चेतना को भी अभिव्यक्ति देते रहे हैं। दिनकर की रचनाधर्मिता मे ओजस्विता उदात्तता कल्पनाशीलता राष्ट्रीयता युगधर्मिता आदि विभिन्न प्रवृत्तियों का अद्भुत समाहार हुआ है किन्तु क्रान्तिमनता की प्रवृत्ति आद्यन्त विद्यमान रही है। यह सच है कि उनकी क्रान्तिमत चेतना विश्वजनीन महान क्रान्तियों और क्रान्तिकारी विचारकों स प्रभावित हुई है किन्तु वे अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहते हुए क्रान्ति का उदघोष करने म सक्षम हुए हैं। यही कारण है कि दिनकर की क्रान्तिमत चेतना बहुआयामी है।

दिनकर की काव्यकृतियों के माध्यम म निरूपित सामाजिक सन्दर्भों के अनुशीलन म यह तथ्य उजागर होता है कि वे समाज के पीडित और शोषित वर्गों के प्रति सतत जागरूक बने रहे हैं। उनके मन म पददलित वर्ग का निर्मम शोषण देख कर करुण आक्रोश की ज्वाला धधकती रही है। जहा तक क्रान्तिमत चेतना के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का सम्बन्ध है, दिनकरजी निर्भय होकर तानाशाही राजसत्ता तथा साम्राज्यवादी, फासिस्टवादी और राजतन्त्रीय जनविरोधी राजनीतिक विचारधाराओं का विरोध करते रहे हैं। मार्क्सवादी चिन्तन म अगत प्रभावित होते हुए भी उन्हें हम साम्यवादी चेतना का रचनाकार नहीं कह सकते, क्योंकि वे मूलत मानववादी ~~काव्यसर्जक~~ रहे हैं। दिनकर की काव्यप्रवृत्ति राष्ट्रवादी चिन्तन म अत्यधिक रही

है। धार्मिक क्षेत्र मे उन्होने शताब्दियो स भारतीय जीवन और समाज मे परिव्याप्त रूढियो का खण्डन करत हुए युगधम की प्रतिष्ठा की। धम के नाम पर होने वाले शोषण का विरोध करते हुए दिनकरजी ने कण धर्म' की प्रतिष्ठा की। कवि के लिए धम एक व्यापक मानव हितकारी धारणा के रूप मे मान्य रहा है। जहा कही भी धम की इस धारणा का खण्डन हुआ है वही दिनकर का स्वर आक्रोशपूर्ण मुद्रा धारण कर लेता है। साहित्यिक सरचना के क्षेत्र म नय नये प्रयाग करके दिनकरजी ने क्रान्तिमत चेतना का प्रभूत परिचय दिया है।

इस प्रकार दिनकर के काव्य म क्रान्तिमत चेतना के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक आदि सभी परिप्रक्ष्य उन्ह एक क्रान्तिकारी रचना दष्टि वाले कवि के रूप म सुप्रतिष्ठित करत हैं। दिनकर की काव्य साधना का क्षेत्र इतना लोक मागलिक और राष्ट्रव्यापी रहा है कि उन्ह राष्ट्रकवि के गौरव म विभूषित किया गया। स्वर्गीय श्री मथिलीशरण गुप्त के पश्चात व स्वतन्त्र भारत के दूसरे राष्ट्रकवि बने। दिनकर की यशस्वी लेखनी अपन जीवन क अन्तिम क्षणो तक राग और आग की क्रीडा करती रही। सन १९६२ म भारत पर हुए चीनी आक्रमण क प्रतिरोध म लिखित परशुराम की प्रतीक्षा नामक लम्बी कविता उनकी क्रान्तिमत चेतना का ज्वलन्त प्रमाण है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि क्रान्ति की जो चिनगारी १४ वष की आयु म दिनकर की रचनाओ म उत्पन्न हुई थी वह ओजस्विता की समिधा प्राप्त करती हुई ६२ वष की आयु म भी निरन्तर प्रज्वलित होती हुई ज्वाला क समान धधकती रही।

समष्टि रूप म दिनकर क काव्य का अनुशीलन हम यह स्वीकारने को बाध्य करता है कि वे पौरुष ओज राष्ट्रीयता और क्रान्तिमत चेतना के अप्रतिम रचनाकार है। इन्ही प्रवत्तियो क कारण उनका काव्य हिमगिरी की सी गौरव गरिमा से मण्डित है। दिनकर क काव्यो म क्रान्तिमतता की वह प्रभा विद्यमान है जो शताब्दियो तक भारतीय जन मानस को आलोकित करती रहगी। वस्तुत इसी परिप्रक्ष्य म दिनकरजी का काव्य सृजन अभिनन्दनीय है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

आधार ग्रन्थ

दिनकरजी के काव्य

(१) अनल किरीट, (२) अर्धनारीश्वर (३) आत्मा की आँखें, (४) इतिहास के आँसू (५) उर्वशी (६) कोयला और कवित्व, (७) कुरुक्षेत्र, (८) चक्रवाल, (९) दिल्ली (१०) दिगम्बरी (११) द्वन्द्वगीत (१२) धूप और धुआँ, (१३) नील कुसुम (१४) नीम के पत्ते (१५) नये सुभाषित (१६) परशुराम की प्रतीक्षा, (१७) प्रणभंग (१८) बट पीपल, (१९) बापू (२०) मति तिलक (२१) मिट्टी की ओर (२२) रेणुका, (२३) रश्मिरथी (२४) विपथगा, (२५) सामधेनी, (२६) सीपी और शंख (२७) हुंकार (२८) हा-हाकार (२९) हिमालय, (३०) हारे को हरिनाम।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

(१) आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
(२) आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव—डा० हरिकृष्ण पुरोहित
(३) आधुनिक राजनीतिक चिन्तन का इतिहास—डा० गगान्त तिवारी
(४) आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद—डा० शम्भुनाथ पाण्डेय
(५) आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि—डा० रामदरश मिश्र
(६) आधुनिक राजस्थानी साहित्य—डा० [illegible] भारद्वाज
(७) आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि रामधारीसिंह दिनकर—मन्मथनाथ गुप्त
(८) आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन—डा० गणेशदत्त गौड़
(९) आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य—डा० देवीप्रसाद गुप्त
(१०) [illegible] प्रसाद और उनका [illegible]—डा० कृष्णदेव शारी
(११) उर्दू साहित्य का इतिहास—सय्यद एहतेशाम हुसैन
(१२) कालिदास—[illegible]नाथ राय
(१३) कांग्रेस का इतिहास—डा० बी० पट्टाभि सीतारमैया

(१४) कथाकार प्रेमचन्द और गोदान—जितेन्द्रनाथ पाठक
(१५) कवि दिनकर व्यक्ति और कृतित्व—डा० सावित्री सिन्हा
(१६) काव्य सौरभ—डा० कुवर चन्द्रप्रकाश सिंह
(१७) कबीर मीमासा—डा० रामचन्द्र तिवारी
(१८) गाधीवाद का शव परीक्षा—यशपाल
(१९) छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० कमलाप्रसाद पाडे
(२०) छायावाद एतिहासिक सामाजिक विश्लेषण—डा० नामवरसिंह
(२१) जलते और उबलते प्रश्न—डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
(२२) जनकवि दिनकर—डा० सत्यकाम वर्मा
(२३) तुलनात्मक शोध और समीक्षा—डा० पी० आदेश्वर राव
(२४) दिनकर के काव्य—लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी
(२५) दिनकर—प्रा० शिवबालक राय
(२६) दिनकर की काव्य भाषा डा० यतीन्द्रनाथ तिवारी
(२७) दिनकर वचारिक क्रान्ति के परिवेश म—डा० पी० आदेश्वर राव
(२८) दिनकर एक पुनमूल्याकन—प्रा० विजयेन्द्रनारायण सिंह
(२९) दिनकर व्यक्तित्व एव कृतित्व—कुमारी पदमाक्षी
(३०) दिनकर सृष्टि और दृष्टि—हरप्रसाद शास्त्री
(३१) दिनकर का वीरकाव्य—धमपालसिंह आय
(३२) दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि—प्रा० कामेश्वर शर्मा
(३३) दिनकर और उनकी काव्य कृतिया—प्रो० कपिल
(३४) दिनकर के काव्य म राष्ट्रीय भावना—सुनीति
(३५) धमवीर भारती कनुप्रिया तथा अन्य कृतिया – डा० ब्रजमोहन शर्मा
(३६) धम और समाज—डा० राधाकृष्णन
(३७) नयी कविता की चेतना—जगदीश कुमार
(३८) निराला का गद्य साहित्य—डा० प्रेमप्रकाश भटट
(३९) निबन्ध सिन्धु—डा० मनमोहन शर्मा
(४०) नयी कविता के प्रतिमान—लक्ष्मीकान्त वर्मा
(४१) प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज—डा० इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा
(४२) प्रेमचन्द—डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित
(४३) प्रगति और परम्परा—डा० रामविलास शर्मा
(४४) बीसवी शती (पूर्वाद्ध) के महाकाव्य—डा० प्रतिपालसिंह
(४५) भारतीय राजनीति और राजनीतिक दल समस्याए और समाधान डा० सुभाष काश्यप
(४६) भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन—रामनारायण यादवेन्द्र
(४७) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—डा० रामविलास शर्मा

४८) भारत—अमतपाद टागे (अनुवादक आदित्य मिश्र)
४६) भारतीय समाज का एतिहासिक विश्लेषण—डा० भगवतशरण उपाध्याय
५०) भारत का सास्कृतिक इतिहास—हरिदत्त वेदालकार
(५१) भारत का सम्पूर्ण इतिहास—डा० गोपीनाथ शर्मा
(५२) महाकवि दिनकर की उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ—डा० विमलकुमार जैन
(५३) युगचारण दिनकर—डा० सावित्री सिन्हा
(५४) युगमूर्ति रवीन्द्रनाथ—काका साहब कालेकर
(५५) युगकवि दिनकर—प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव
(५६) युगचेता दिनकर और उनकी उर्वशी—डा० राजपाल शर्मा
(५७) रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्व मानवता की ओर—अनुवादक—इलाचन्द्र जोशी
(५८) राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास—डा० मन्मथनाथ गुप्त
(५६) राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी काव्य कला—डा० शेखरचन्द जैन
(६०) रश्मिरथी—समीक्षा—सुधांशु
(६१) राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, स० प्रतापचन्द्र जैसवाल
(६२) विचार और निष्कर्ष—डा० नगेन्द्र
(६३) विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र
(६४) श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य—डा० रामचन्द्र मिश्र
(६५) साहित्य के मान और मूल्य—डा० मोतीलाल मेनारिया
(६६) समाजवाद सर्वोदय और लोकतन्त्र—जयप्रकाश नारायण
(६७) स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य—डा० रामविलास शर्मा
(६८) साहित्य चिन्ता—डा० देवराज
(६६) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० देवीप्रसाद गुप्त
(७०) समीक्षा और मूल्यांकन—डा० हरिचरण शर्मा
(७१) साहित्य सिद्धान्त और समालोचना—डा० देवीप्रसाद गुप्त
(७२) स्वतन्त्रता की ओर—हरिभाऊ उपाध्याय
(७३) सन्त साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० सावित्री शुक्ल
(७४) साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त—सरोजिनी मिश्रा
(७५) साहित्यिक निबन्ध—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
(७६) शुद्ध कविता की खोज—डा० रामधारीसिंह दिनकर
(७७) हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन—डा० परमलाल गुप्त
(७८) हिन्दी उपन्यास का विकास और नतिकता—डा० सुखदेव शुक्ल
(७६) हिन्दी कविता का क्रान्ति युग—प्रो० सुधीन्द्र
(८०) हिन्दी के पांच लोकप्रिय कवि और उनका काव्य—प्रकाश नागमथ
(८१) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डा० बनीप्रसाद
(८२) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डा० श्यामसुन्दर व्यास
(८३) हिन्दी की महिला साहित्यकार—सत्यप्रकाश मिलिन्द

(८४) हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन—डा० देवीप्रसाद गुप्त
(८५) हिन्दी उपन्यासों मे नायिका की परिकल्पना—डा० सुरेश सिन्हा
(८६) हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां—डा० शिवकुमार शर्मा
(८७) हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य—डॉ० देवीप्रसाद गुप्त

कोश

हिन्दी

(८८) आदर्श हिन्दी कोश—स० रामचन्द्र पाठक
(८९) तुलसी शब्द सागर—स० डा० भोलानाथ तिवारी
(९०) नालन्दा विशाल शब्द सागर—स० श्री नवल जी
(९१) प्रामाणिक हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा
(९२) वृहत् हिन्दी कोश—डा० कालिकाप्रसाद राजवल्लभ सहाय मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव
(९३) सूक्ति कोश—रामस्वरूप शास्त्री 'रसिकेश'

अंग्रेजी

(९४) Bhargava s Standard Illustrated Dictonary
(९५) The Unabridged Edition the Random House Dictionary of the English Language p 1227
(९६) The Oxford English Dietionarv, Vol VIII
(९७) Webster's New International Dictionary of the Enaglish Lgnguage—William allan Nelson
(९८) Webster s New World Dictionary (London)—Macmillan

पत्रिका

हिन्दी

(९९) कादम्बिनी अप्रल, १९६९
(१००) British Impact on India, Sir p G Grifth
(१०१) Essays on History—Emerson
(१०२) Forty thousand Quotations Douglas
(१०३) The Principles of Revolution—C D Burns

□□□